समवसरण-सोहा

(समवशरण शोभा)

आचार्य वसुनन्दी मुनि

ग्रंथ	:	समवसरण-सोहा (समवशरण शोभा)
मंगल आशीर्वाद	:	परम पूज्य श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज
ग्रंथकार	:	अभीक्षण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज
संपादन	:	आर्यिका वर्धस्वनंदनी
प्राप्ति स्थान	:	• श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बोलखेड़ा (कामां) राजस्थान
संस्करण	:	द्वितीय 1000 (सन् 2021)
प्रकाशक	:	निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति (पंजी.)
मुद्रक	:	पारस प्रकाशन, दिल्ली मो.: 9811374961, 9818394651, 9811363613 pkjainparas@gmail.com, kavijain1982@gmail.com

संपादकीय

ज्ञानाद्धितं वेत्ति ततः प्रवृत्तिं, रत्नत्रये संचित कर्म मोक्षः।
ततस्ततः सौख्यमबाध मुच्चैस्तेनात्रयत्नं विदधाति दक्षः॥

मनुष्य ज्ञान से हित को जानता है, हित का ज्ञान होने से रत्नत्रय में प्रवृत्ति करता है, रत्नत्रय में प्रवृत्ति करने से संचित कर्मों से मोक्ष होता है और संचित कर्मों के मोक्ष से निर्बाध उत्तम सुख की प्राप्ति होती है, इसलिये चतुर मनुष्य ज्ञान में प्रयत्न करते हैं।

भव्य-नराः ज्ञानरथाधिरूढाः, व्रजन्ति शीघ्रं शिवपत्तनञ्च।
अज्ञानिनो मौढ्यरथाधिरूढाः, व्रजन्ति श्वभ्राभिधपत्तनं वै॥

ज्ञान रूपी रथ पर सवार हुए भव्य जीव शीघ्र मोक्षरूपी नगर को प्राप्त होते हैं और मूर्खतारूपी रथ पर सवार हुए अज्ञानी जीव निश्चय से नरकरूपी नगर को प्राप्त होते हैं।

चेतना के क्षितिज पर उदीयमान सम्यग्ज्ञान का आदित्य अज्ञान रूपी तम को तिरोहित कर वस्तु का सम्यक् अवबोध कराने में समर्थ होता है और सम्यग्ज्ञान का यह मिहिर श्रुताभ्यास स्वाध्याय से तेजस्विता को प्राप्त होता है। ''सम्यग्ज्ञान का वह सूर्य कषायों का अवशोषण, भोग रूपी कीटाणुओं का नाश, सम्यगावबोध का प्रकाश फैलाता है।'' स्वाध्याय में निरत व्यक्ति के लिये मोक्ष रूपी दुर्ग तक पहुँचने में बाधक संसार का यह दुर्गम व दुर्लंघ्य सा प्रतीत होने वाला गिरी राईवत् हो जाता है जिससे मोक्ष यात्रा सरल व सुगम हो जाती है।

अत: भव्य जीवों के हितार्थ आचार्य श्री ने मूलभाषा प्राकृत में ग्रंथों का लेखन किया, जिससे भाषा को जीवंतता भी प्राप्त हो और सद्साहित्य के आलोक से संपूर्ण विश्व प्रकाशित हो सके।

तीर्थंकरों की धर्म सभा तीनों लोकों में अतिशय युक्त है। उसकी शोभा अप्रतिम है। समवशरण में साक्षात् जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन करने वाला तो नियम से भव्य होता ही है वरन् समवशरण का ध्यान करने वाला भी भव्य ही होता है। किसी पदार्थादि के ध्यान के लिये उसके स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। 786 गाथाओं में निबद्ध यह ग्रंथ समवशरण के सम्यक्स्वरूप व शोभा का निरूपण करने वाला है। मानवीय आदि अलंकारों को लिये गाथाओं का सौष्ठव श्लाघनीय है यथा–

मुणिचित्तं इव णिम्मल-णीरजुदा भासंति महावावी।
भूमि -णिम्मिद-णयणं व, पस्सेदुं हु जिणवर-विहवं॥124॥

मुनि के चित्त के समान निर्मल नीर से युक्त महावापी ऐसे सुशोभित होती है जैसे जिनवर के वैभव को देखने के लिये भूमि ने नयनों का निर्माण किया हो।।

ग्रंथ में अष्टभूमि, मानस्तंभ, चैत्यादि वृक्ष, स्तूप, पीठ आदि का प्रमाण सहित वर्णन ग्रंथकार द्वारा किया गया है। तिलोयपण्णत्ति हरिवंश पुराण, आदि पुराणादि का आश्रय ले पूर्वाचार्यों के अनुसार ही श्रुत का संवर्द्धन आचार्य श्री द्वारा किया गया है। प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में 12 सभाओं में विद्यमान श्रावक, श्राविका, ऋद्धिधारी मुनि, गणधर, आर्यिका, मन:पर्यय ज्ञानी आदि की संख्या का निरूपण किया है व 64 ऋद्धियों के स्वरूप का वर्णन भी ग्रंथ में समाहित है।

आचार्य गुरुवर ने 786 गाथाओं का लेखन लगभग 12 दिनों में ही किया। उनकी मेधा व स्मरण शक्ति श्लाघनीय है। ग्रंथ लेखन

के समय हम तीर्थंकरों के राज्यकाल आदि देखने के लिये ग्रंथावलोकन करते थे और उतने समय में गुरु जी संख्या बोलकर लिखा ही देते थे हम बस विस्मित होकर देखते ही रह जाते कि इतनी संख्यायें उनकी स्मृति में कैसे हैं? किन्तु हमारा यह विस्मय भी वैसा ही था जैसे कोई बालक सूर्य में तेजस्विता के होने का विस्मय करे, वह तो स्वभाव से ही ओजस्वी, प्रखर व दीप्तिमय है।

परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी महाराज का व्यक्तित्व शब्दों की श्रृंखलाओं में नहीं बाँधा जा सकता। क्या आकाश को आज तक कोई बांध सका है? तब आकाश के समान निर्लेप, नि:संग, बाह्य जगत से शून्य सभी को अवगाहन देने वाले गुरुवरश्री भी शब्दों से निर्बंध हैं। गुरुवर श्री की सहजता, सरलता, अगाध ज्ञान, अद्भुत चिंतन, निर्मलचर्या, गुरु व पूज्यजनों के प्रति विनय भाव, ज्ञानियों के प्रति सम्मान व वात्सल्य का भाव, निरंतर लेखन-पठन जापादि में संलग्नता आदि मात्र वही जान सकता है जिसे गुरुवर श्री का सान्निध्य कुछ क्षण भी प्राप्त हुआ हो। जैसे नदी की शीतलता का अनुमान तो दूर से व्यक्ति लगा सकता है किन्तु उसमें अवगाहन करने वाला ही उसको सम्यक् रूप से जान पाता है।

सागर का परिमाण किंचित् संभव है किन्तु जिनेन्द्र मुद्रांकित आगमचक्षु, धर्मोपदेष्टा, सम्यक्चारित्र निष्ठ, स्वाध्याय परायण, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी गुरुदेव के ज्ञान का परिमाण संभव नहीं है। जहाँ से योगी की आध्यात्मिकता का कथन करने वाले आध्यात्मिक ग्रंथ, जिनधर्म के मर्म व सूत्रों का व्याख्यान करने वाले सैद्धान्तिक ग्रंथ, करणीय व्यवहारों की संहिता स्वरूप चरणानुयोग ग्रंथ एवं देश-समाज, संस्कृति व सभ्यता के संरक्षण, संवर्धन हेतु ग्रंथों का प्रकाशन हुआ हो वहीं वास्तु-ज्योतिष, आयुर्वेद व राष्ट्र के प्रति उदात्त चेतना के लिये राष्ट्रशांति महायज्ञ, आत्मनिर्भर भारत, हमारा आर्यावर्त जैसे ग्रंथों

का लेखन कर गुरुवर श्री ने देश को अमूल्य निधि प्रदान की।

यदि इस ग्रंथ के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज का संयम, तप, ज्ञान, साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक संपूर्ण विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परम पूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!.....।।

''जैनम् जयतु शासनम्''

श्री शुभमिति माघ शुक्ल दशमी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2547
सोमवार 22.2.2021
श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली-बौलखेड़ा,
कामां, भरतपुर (राज.)

आर्यिका वर्धस्वनंदनी

अनुक्रमणिका

मंगलाचरण 11
धूलीसालों का संपूर्ण वर्णन 21
चैत्यप्रासाद भूमि प्ररूपण 27
नाट्यशालाओं का निरूपण 29
मानस्तंभ निरूपण 31
प्रथम वेदी निरूपण 42
खातिका भूमि निरूपण 42
दूसरी वेदी एवं वल्ली क्षेत्र प्ररूपण 45
द्वितीय कोट 47
उपवन भूमि 48
तृतीय वेदी व ध्वज भूमि 54
तीसरा कोट 59
कल्पवृक्ष भूमि 61
चतुर्थ वेदी व भवन भूमि 65
चतुर्थ कोट 68
श्री मंडप भूमि 70
प्रथम पीठ 74
प्रथम पीठ परिधि 76
पीठ मेखला 76
द्वितीय पीठ वर्णन 78
तृतीय पीठ का विस्तार व ऊँचाई 81
गंधकुटी निरूपण 82
अष्टप्रातिहार्य 85
जन्मातिशय 87
केवलज्ञानातिशय 90

देवकृतातिशय 92
मुख्य गणधर व संख्या 95
चौंसठ ऋद्धि निर्देश 99
विपुलमति व अवधिज्ञानियों की संख्या 114
विक्रियाऋद्धिधारी एवं वादि मुनिराजों की संख्या 122
सामान्य केवली की संख्या 127
आर्यिकाओं की संख्या 132
श्रावक-श्राविका 136
यक्ष-यक्षिणी नाम निर्देश 137
मुख्य श्रोता 141
तीर्थंकरों के केवलज्ञान स्थान, तिथि, समय का निर्देश 141
केवलिकाल 146
तीर्थकाल 150
समवशरण व जिनदेव माहात्म्य 155
ग्रंथ प्रयोजन 163
ग्रंथकार की लघुता 163
आशीर्वाद भावना 164
अंतिम मंगलाचरण 164
प्रशस्ति 166

समवसरण-सोहा

(समवशरण शोभा)

तीर्थंकरों की धर्म सभा तीनों लोकों की सर्वश्रेष्ठ सभा है। जिसकी सम्पूर्ण शोभा-सुरम्यता के वर्णन में कंथचित्-गणधर भी समर्थ नहीं हैं। समवशरण की रचना तीन लोक की लक्ष्मी का एक स्थान पर एकत्रित होने का भ्रम उत्पन्न करने वाली होती है। यह ग्रंथ वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकरों के समवशरण की भूमि, कोटादि व शिष्यादि के परिमाण व उसकी अनुपमेय शोभा का दिग्दर्शन कराता है।

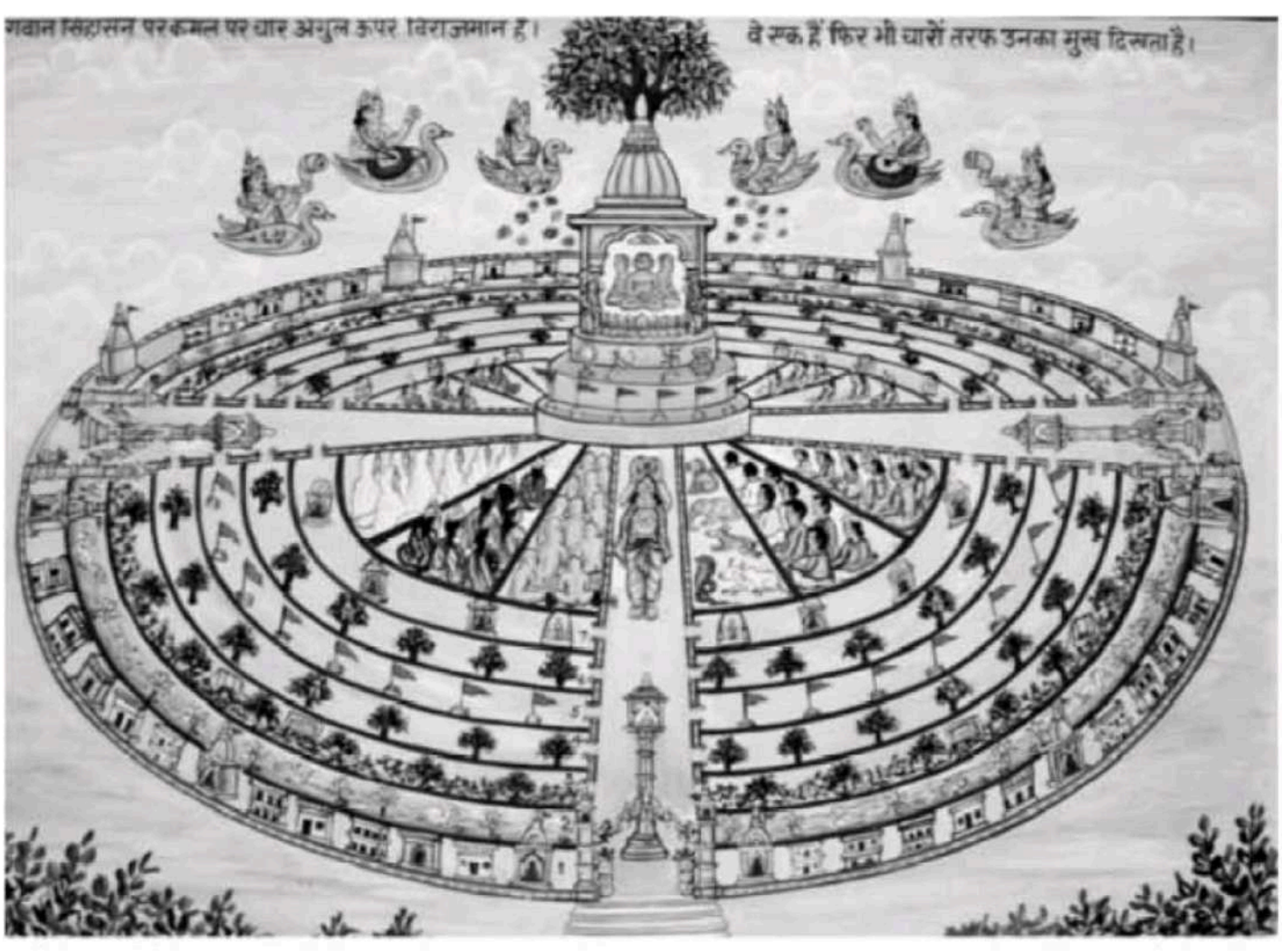
वे सब हैं फिर भी चारों तरफ उनका मुख दिखता है।

समवसरण-सोहा
(समवशरण शोभा)

मंगलाचरण

सव्वण्हू गदरायी, णमामि पण-कल्लाण-विहूदि-जुदा।
हिदुवदेसी तिकालिय-तित्थयरा अप्प-णिहि-लहिदुं।।1।।

अर्थ-सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी, पंच-कल्याणक विभूति से युक्त त्रैकालिक तीर्थंकरों को आत्म निधि की प्राप्ति के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) नमस्कार करता हूँ।

धम्म-पवट्टी कया वि, ण संभवो विणा जस्स देसणाइ।
तित्थयर-धम्म-सहं हु, भव्वाणं सुहत्थं भणामि।।2।।

अर्थ-जिनकी देशना के बिना धर्म की प्रवृत्ति कदापि संभव नहीं है उन तीर्थंकर की धर्म सभा को भव्यों के सुख के लिए कहता हूँ।

अरिहा सिद्धाइरिया, पाढग-साहू जिणधम्ममागमं।
जिणबिंब-भवणाइं च, सवरहिदत्थं पणमामि सय।।3।।

अर्थ-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनबिंब और जिनभक्तों को स्वपर हित के लिए सदा प्रणाम करता हूँ।

गब्भजम्मप्पवज्जा, केवलणाणं मोक्खकल्लाणं च।
णिस्सरदि भवि-पुण्णेहि, दिव्वझुणी केवलं पच्छा।।4।।

अर्थ-तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और मोक्ष ये पाँच कल्याणक होते हैं। केवलज्ञान के पश्चात् भव्यों के पुण्य से भगवान् की दिव्यध्वनि खिरती है।

समवसरण-णामेणं, पसिद्धा धम्म-सहा तित्थयराण।
सोधम्मण्णाइ रयदि, विक्किरियाए सहं धणदो।।5।।

अर्थ-तीर्थंकरों की धर्मसभा समवशरण नाम से प्रसिद्ध है। सौधर्म इंद्र की आज्ञा से धनद (कुबेर इंद्र) विक्रिया से समवशरण की रचना करता है।

आयास-महण्णवव्व, चंदक्कव्व सिद्धारिहव्व तहा।
मेरु-सग्गविमाणव्व, णिरुवमो हु सुह-समवसरणो।।6।।

अर्थ-शुभ समवशरण आकाश, महार्णव, चंद्र, सूर्य, सिद्ध, अरिहंत, मेरु और स्वर्ग विमान के समान अनुपम है।

जह परमाणू केवल-णाण-मणंतदंसणं वीरियं च।
अप्पस्स गुणसहावं, णिरुवमो तहा समवसरणो।।7।।

अर्थ-जिस प्रकार परमाणु, केवल ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य व आत्मा के गुण स्वभाव निरुपम है उसी प्रकार समवशरण भी निरुपम है।

कस्स वि पुरिसस्स धम्म-सहा ण हवदि तित्थयरोव्व कयावि।
सामण्ण-केवलीणं, गंधउडी सोहदे मेत्तं।।8।।

अर्थ-किसी भी पुरुष की धर्मसभा कभी भी तीर्थंकर की धर्मसभा के समान नहीं होती। सामान्य केवलियों की मात्र गंधकुटी सुशोभित होती है।

सुणदि तत्थ चिट्ठित्ता, धम्मदेसणं तिगदि-भव्वजीवा।
भव्व-हिदत्थं विज्जदि, लोगिग-परमट्ठिय-विहवो य।।9।।

अर्थ-वहाँ (समवशरण में) बैठकर तीन गति के भव्य जीव धर्मदेशना का श्रवण करते हैं। भव्यों के हित के लिए वहाँ लौकिक व पारमार्थिक वैभव विद्यमान होता है।

माणुसजम्ममरणठिदि-कल्लाणं अड्ढाइज्ज-दीवम्मि।
माणुसलोयो वि जाण, णेण विणा ण कत्थ वि सक्को।।10।।

अर्थ-मनुष्यों की जन्म, मरण, स्थिति व कल्याण अर्थात् मोक्ष ढाइद्वीप में

ही होता है। इसे मनुष्य लोक भी जानना चाहिए। इसके बिना कहीं भी संभव नहीं है।

पंचदस-कम्मभूमी-विज्जंति अड्ढाइज्ज-दीवे सय।
पंचविदेहखेत्तं हु, सासय-कम्मभूमी णेया।।11।।

अर्थ-ढ़ाई द्वीप में सदा पंद्रह कर्मभूमियाँ विद्यमान होती हैं। पाँच विदेह क्षेत्र शाश्वत कर्मभूमि जाननी चाहिए।

भरहेरावदा दोण्णि-कोडाकोडि-सायर-पेरंतं।
कम्मभूमी सेसेसु, भोगमही इग-कप्पयाले।।12।।

अर्थ-भरत व ऐरावत क्षेत्र एक कल्पकाल में दो कोड़ा-कोड़ी सागर पर्यंत कर्मभूमि रूप होते हैं और शेष समयों में भोगभूमि रूप होते हैं।

एयविदेहे हवंति, णियमेण उवविदेहा बत्तीसा।
इत्थं हि सट्ठि उत्तर-सयज्जखंडाणि विदेहेसु।।13।।

अर्थ-एक विदेहक्षेत्र में नियम से बत्तीस उपविदेह होते हैं। इस प्रकार 5 विदेह क्षेत्र में 160 आर्यखण्ड होते हैं।

एयेय-अज्जखंडं, होज्ज पत्तेयभरहेरावदेसु।
दहज्जखंडाणि तादु, पणगुणिद-मिलेच्छाणि इत्थं।।14।।

अर्थ-प्रत्येक भरत व ऐरावत क्षेत्र में एक-एक आर्यखंड होता है। इस प्रकार 10 आर्यखंड होते हैं व इनसे 5 गुना म्लेच्छ खंड होते हैं।

पण्णासुत्तरट्ठसय-मिलिच्छखंडाणि अड्ढाइज्जम्मि।
होज्ज-सत्तति-अहिय-सय-कल्लाण-जोग्गज्ज खंडाणि।।15।।

अर्थ-ढ़ाई द्वीप में कुल 850 म्लेच्छखंड तथा कल्याण के योग्य 170 आर्यखंड होते हैं।

उक्कस्सेणं सत्तति-अहिय-सयं तित्थयरा हु समयम्मि।
जहण्णेणं विंसदी, णियमा पण विदेहखेत्तेसु।।16।।

अर्थ–अत: एक समय में अधिक से अधिक एक सौ सत्तर तीर्थंकर हो सकते हैं और कम से कम बीस तीर्थंकर पाँच विदेह क्षेत्रों में नियम से होते हैं।

जम्मंति अज्जखंडे, तित्थयरा चक्की अद्धचक्की य।
बलभद्द-कामदेवा, कुलयरादी महापुरिसा हु।।17।।

अर्थ–आर्यखंड में ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्द्धचक्रवर्ती, बलभद्र, कामदेव व कुलकर आदि महापुरुष जन्म लेते हैं।

बेदह-लहुजोजणं हु, सामण्णेण जिण-समवसरणाणं।
वित्थारो होज्ज परं, बेखेत्तेसु हाणि-विड्ढी वि।।18।।

अर्थ–सामान्यत: तीर्थंकर जिनेन्द्रों के समवशरणों का विस्तार बारह लघुयोजन का होता है किन्तु दोनों (भरत व ऐरावत) क्षेत्रों में हानि व वृद्धि भी होती है।

बारस-जोजणं उसह-जिणिंद-समवसरणस्स वित्थारो।
जोजणद्धूणो तादु, पत्तेयं णेमिणाहंतं।।19।।

अर्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र के समवशरण का विस्तार बारह योजन था। पुन: श्री नेमिनाथ जिन पर्यंत प्रत्येक का उससे आधा योजन कम होता गया।

णेमिणाहस्स चदुत्थ-भाग-हीणो पासणाहस्स सहा।
वड्ढमाणस्स वि तादु, इत्थं वित्थारो जाणेज्ज।।20।।

अर्थ–श्री पार्श्वनाथ स्वामी की सभा श्री नेमिनाथ भगवान् की सभा से चतुर्थ भाग हीन थी व उससे भी चतुर्थ भाग हीन श्री वर्द्धमान स्वामी की थी। इस प्रकार समवशरण का विस्तार जानना चाहिए।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर महावीर स्वामी पर्यंत समवशरण का विस्तार क्रमश:-12 योजन, $11\frac{1}{2}$ यो., 11 यो.,

$10\frac{1}{2}$ यो. 10 यो., $9\frac{1}{2}$ यो., 9 यो. $8\frac{1}{2}$ यो., 8 यो., $7\frac{1}{2}$ यो., 7 यो. , 6 $\frac{1}{2}$ यो., 6 यो., $5\frac{1}{2}$ यो., 5 यो., $4\frac{1}{2}$ यो., 4 यो., $3\frac{1}{2}$ यो., 3 यो., 2 $\frac{1}{2}$ यो., 2 यो., $1\frac{1}{2}$ यो., $1\frac{1}{4}$ यो., 1 योजन रहा।

परमोराल-सरीरं, पुढवीए पंचसहस्सा चावा।
गच्छदे सव्व-जिणाण, समुप्पण्णे केवलणाणे।।21।।

अर्थ-केवल ज्ञान समुत्पन्न होने पर सभी जिनों का परमौदारिक शरीर 5000 धनुष ऊपर चला जाता है।

भव-तण-भोय-विरत्तो, खयिय-सम्मत्त-चरित्त-सहिदो जो।
सविदिय-सुक्कं केवल-जोग्गो खलु वीयरायी सो।।22।।

अर्थ-जो संसार, शरीर, भोगों से विरक्त, क्षायिक सम्यक्त्व व चारित्र से सहित द्वितीय शुक्ल ध्यान से युक्त होता है वह वीतरागी व केवल ज्ञान के योग्य होता है।

विंतरा पडहरवेहि, संखघोसेण भवणवासी तहा।
कप्पवासी घंटाइ, सीहणादेणं जोइसिआ।।23।।

आसणस्स कंपणेण, इंदा अहमिंदा जाणिदूणं च।
केवलुप्पत्तिं सत्तपदं गदुअ णमंति भत्तीइ।।24।।

अर्थ-पटह के शब्दों से व्यंतर, शंख के उद्घोष से भवनवासी, घंटा के नाद से कल्पवासी, सिंह नाद से ज्योतिषी देव आसन के कंपित होने से इंद्र अहमिन्द्र तीर्थंकर की केवलज्ञान की उत्पत्ति जानकर सात पद उसी दिशा में जाकर भक्ति से नमस्कार करते हैं।

अप्पकालम्मि सव्वा, सुरा ते सत्तम-तच्च-कंखाए।
पणमंति तह पणामो, णो कया वि णिप्फलं होज्जा।।25।।

अर्थ-वे सभी देव अल्पकाल में सप्तम तत्त्व की आकांक्षा से प्रणाम करते हैं और प्रणाम कभी भी निष्फल नहीं होता।

उक्कस्सेणट्ठवस्स-अंतोमुहुत्तूण-कोडि-पुव्वाणि।
णेयो केवलिकालो, जहण्णेण वस्स-पिथगत्तं।।26।।

अर्थ-केवलिकाल अधिक से अधिक आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व व कम से कम वर्ष पृथक्त्व (3 वर्ष से 9 वर्ष) जानना चाहिए।

इंदणीलमणिमयी य, आइच्चमंडलं व वट्टा जाण।
जिणिंद-समवसरणस्स, सामण्णभूमी अखंडा हु।।27।।

अर्थ-तीर्थंकर जिनेंद्र के समवशरण की सामान्य भूमि इंद्रनीलमणि से निर्मित सूर्य मंडल के सदृश गोल व अखंड जाननी चाहिए।

वीसदी सहस्साइं, सुवण्णमयाइं हु सोवाणाइं।
पत्तेयं चउदिसासु, समवसरणे णादव्वाइं।।28।।

अर्थ-समवशरण में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में बीस हजार स्वर्णमय सीढ़ीयाँ जाननी चाहिए।

बाला वुड्ढा य जुवा, सव्वा चडंति अंतरमुहुत्तम्मि।
तित्थयर-जिण-सहाए, बीस-सहस्स-सोवाणाइं।।29।।

अर्थ-बाल युवा व वृद्ध सभी तीर्थंकर जिनेन्द्र की सभा की बीस हजार सीढ़ियाँ अंतर्मुहूर्त में चढ़ जाते हैं।

चउवीस-जोजणाइं उसहजिणे चउवीस-भाजिदाइं।
णेमि-जिणंतं कमसो, एगूणं दीहत्तं तहा।।30।।
पंचकोसा पासम्मि, चदू वड्ढमाणस्स समवसरणे।
अट्ठदाल-भाजिदा य, सोवाणाणं मुणेदव्वं।।31।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में सोपान की लम्बाई 24 से भाजित 24 योजन है। पुनः श्री नेमिनाथ पर्यंत क्रमशः भाज्य राशि में से एक-एक योजन कम होती गई है। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में सीढ़ियों की लम्बाई अड़तालीस से भाजित पाँच कोस और श्री वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में अड़तालीस से भाजित चार कोस प्रमाण जाननी चाहिए।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्र से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त समवशरण सोपानों की लम्बाई क्रमश:–

योजन में– $\frac{24}{24}$ अर्थात 1 योजन, $\frac{23}{24}$ यो., $\frac{22}{24}$ यो., $\frac{21}{24}$ यो., $\frac{20}{24}$ यो., $\frac{19}{24}$ यो., $\frac{18}{24}$ यो., $\frac{17}{24}$ यो., $\frac{16}{24}$ यो., $\frac{15}{24}$ यो., $\frac{14}{24}$ यो., $\frac{13}{24}$ यो., $\frac{12}{24}$ यो., $\frac{11}{24}$ यो., $\frac{10}{24}$ यो., $\frac{9}{24}$ यो., $\frac{8}{24}$ यो., $\frac{7}{24}$ यो, $\frac{6}{24}$ यो., $\frac{5}{24}$ यो., $\frac{4}{24}$ यो., $\frac{3}{24}$ यो., $\frac{5}{192}$ यो., $\frac{4}{192}$ योजन थी।

कोस में– 4 कोस, $3\frac{5}{6}$ को., $3\frac{2}{3}$ को., $3\frac{1}{2}$ को., $3\frac{1}{3}$ को., $3\frac{1}{6}$ को., 3 कोस, $2\frac{5}{6}$ को., $2\frac{2}{3}$ को. $2\frac{1}{2}$ को., $2\frac{1}{3}$ को., $2\frac{1}{6}$ को., 2 को., $1\frac{5}{6}$ को., $1\frac{2}{3}$ को., $1\frac{1}{2}$ को., $1\frac{1}{3}$ को., $1\frac{1}{6}$ को., 1 कोस, $\frac{5}{6}$ को., $\frac{2}{3}$ को., $\frac{1}{2}$ को., $\frac{5}{48}$ को., $\frac{4}{48}$ कोस थी।

सव्व-समवसरणेसुं, एगहत्थ-उच्छेहो वित्थारो।
पत्तेय-सोवाणस्स, भासिदो जिणागम-णादूहि।।32।।

अर्थ–सभी समवशरणों में प्रत्येक सोपान का उत्सेध एक हाथ व विस्तार भी एक हाथ जिनागम के ज्ञाताओं के द्वारा कहा गया है।

साल-वेदि-वेदि-साल-वेदि-साल-वेदि-साल-वेदी तह।
कमसो मज्झे वसु-भू, जिणो सोहदि अंत तिपीढे।।33।।

अर्थ–क्रमश: कोट, वेदी, वेदी, कोट, वेदी, कोट, वेदी, कोट तथा वेदी है इनके मध्य में आठ भूमियाँ हैं और अभ्यंतर भाग में तीन पीठ पर तीर्थंकर

जिन शोभायमान होते हैं।

सग-सग-तित्थयराणं, वित्थारा-सोवाण-रुंदि-सरिसा।
पढम-पीढ-पेरंतं, णियमेणं चदू वीहीओ।।34।।

अर्थ-समवशरण में नियम से प्रथम पीठ पर्यंत अपने-अपने तीर्थंकरों की समवशरण की सीढ़ियों की लम्बाई के बराबर विस्तार वाली चार वीथियाँ होती हैं।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में वीथियों की चौड़ाई क्रमशः-

कोस में-4 कोस, $3\frac{5}{6}$, $3\frac{2}{3}$, $3\frac{1}{2}$, $3\frac{1}{3}$, $3\frac{1}{6}$, 3 कोस, $2\frac{5}{6}$, $2\frac{2}{3}$, $2\frac{1}{2}$, $2\frac{1}{3}$, $2\frac{1}{6}$, 2 कोस, $1\frac{5}{6}$, $1\frac{2}{3}$, $1\frac{1}{2}$, $1\frac{1}{3}$, $1\frac{1}{6}$, 1 कोस, $\frac{5}{6}$, $\frac{2}{3}$, $\frac{1}{2}$, $\frac{5}{48}$, $\frac{4}{48}$ कोस थी।

योजन में-$\frac{24}{24}$ यो., $\frac{23}{24}$, $\frac{22}{24}$, $\frac{21}{24}$, $\frac{20}{24}$, $\frac{19}{24}$, $\frac{18}{24}$, $\frac{17}{24}$, $\frac{16}{24}$, $\frac{15}{24}$, $\frac{14}{24}$, $\frac{13}{24}$, $\frac{12}{24}$, $\frac{11}{24}$, $\frac{10}{24}$, $\frac{9}{24}$, $\frac{8}{24}$, $\frac{7}{24}$, $\frac{6}{24}$, $\frac{5}{24}$, $\frac{4}{24}$, $\frac{3}{24}$, $\frac{5}{192}$, $\frac{4}{192}$ योजन थी।

एक्केक्क-वीहीणं हु, वित्थारो बे-बे-कोस-पमाणं।
पुण वीरजिणिंदंतं, कमसो हीणं के वि भणंति।।35।।

अर्थ-एक-एक वीथियों का विस्तार दो-दो कोस प्रमाण है और पुनः श्री वीर जिनेंद्र तक यह क्रमशः हीन होता गया है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं।

उसह-सहाइ वीहीण, रुंदी पंचसय-बावण्ण-कोसा।
चउवीस-हिदा य णेमि-पेरंतं हु तेवीसूणा।।36।।

पासणाहस्स पणदस-समहिद-सया कोसा तह सहाए।
वड्ढमाणस्स बिणउदि-कोसा अट्ठदाल भाजिदा।।37।।

अर्थ–श्री ऋषभदेव की सभा में वीथियों की लम्बाई 552/24 कोस थी व इसके आगे नेमिनाथ पर्यंत भाज्य राशि में से क्रमशः 23 कम होती गई। श्री पार्श्वनाथ प्रभु की सभा में 115/48 कोस व वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में 92/48 कोस थी।

गाथा–34 विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत समवशरण में वीथियों की लम्बाई क्रमशः–

कोस में– $\frac{552}{24}$, $\frac{529}{24}$, $\frac{506}{24}$, $\frac{483}{24}$, $\frac{437}{24}$, $\frac{414}{24}$, $\frac{391}{24}$, $\frac{368}{24}$, $\frac{345}{24}$, $\frac{322}{24}$, $\frac{299}{24}$, $\frac{276}{24}$, $\frac{253}{24}$, $\frac{230}{24}$, $\frac{207}{24}$, $\frac{184}{24}$, $\frac{161}{24}$, $\frac{138}{24}$, $\frac{115}{24}$, $\frac{92}{24}$, $\frac{69}{24}$, $\frac{115}{48}$, $\frac{92}{48}$ कोस थी।

योजन में– $5\frac{3}{4}$ योजन, $5\frac{49}{96}$ यो., $5\frac{13}{48}$ यो., $5\frac{1}{32}$ यो., $4\frac{19}{24}$ यो., $4\frac{53}{96}$ यो., $4\frac{5}{16}$ यो., $4\frac{7}{96}$ यो., $3\frac{5}{6}$ यो., $3\frac{19}{32}$ यो., $3\frac{17}{48}$ यो., $3\ \frac{11}{96}$ यो., $2\frac{7}{8}$ यो., $2\frac{61}{96}$ यो., $2\frac{19}{48}$ यो., $2\frac{5}{32}$ यो., $1\frac{11}{12}$ यो., $1\frac{65}{96}$ यो., $1\frac{7}{16}$ यो., $1\frac{19}{96}$ यो., $3\frac{5}{6}$ यो., $\frac{23}{24}$ यो., $\frac{23}{32}$ यो., $\frac{115}{192}$ यो., $\frac{23}{48}$ योजन थी।

वीहिय-पासभागेसु, वीहीण रुंदि-सम-दीहत्त-जुदा।
णिम्मल-दग-णिम्मिदाउ, बे वेदीओ मुणेदव्वा।।38।।

अर्थ–वीथियों के दोनों पार्श्वभागों में वीथियो की लंबाई के समान लंबाई से युक्त निर्मल स्फटिक की निर्मित दो वेदियाँ जाननी चाहिए।

उसहे अट्ठभाजिदा, वेदि-बाहल्लं छसहस्सदंडा।
अट्ठाइज्ज-सयूणा, कमेण णेमि-जिण-पज्जंतं।।39।।

अर्थ–श्री ऋषभदेव के समवशरण में वेदी की मोटाई 6000/8 धनुष थी। पुन: श्री नेमि जिन पर्यंत ढाइ सौ कम होते गए। ये सभी 8 से भाजित हैं।

पणवीसाहिय-छस्सय-दंडा अट्ठहिदा पास-सहाए।
बेहिदा एगसय-पणवीस-दंडा वड्ढमाणस्स।।40।।

अर्थ–श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में वेदी का बाहल्य 625/8 धनुष व वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में दो से भाजित एक सौ पच्चीस अर्थात् 125/2 धनुष था।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में वेदी की मोटाई क्रमश: $\frac{6000}{8}$ धनुष, $\frac{5750}{8}$ ध., $\frac{5500}{8}$ ध., $\frac{5250}{8}$ ध., $\frac{5000}{8}$ ध., $\frac{4750}{8}$ ध., $\frac{4500}{8}$ ध., $\frac{4250}{8}$ ध., $\frac{4000}{8}$ ध., $\frac{3750}{8}$ ध., $\frac{3500}{8}$ ध., $\frac{3250}{8}$ ध., $\frac{3000}{8}$ ध., $\frac{2750}{8}$ ध., $\frac{2500}{8}$ ध., $\frac{2250}{8}$ ध., $\frac{2000}{8}$ ध., $\frac{1750}{8}$ ध., $\frac{1500}{8}$ ध., $\frac{1250}{8}$ ध., $\frac{1000}{8}$ ध., $\frac{750}{8}$ ध., $\frac{625}{8}$ ध., $\frac{125}{2}$ धनुष थी।

णिय-णिय-तित्थयराणं, चउगुणिदो खलु देहुच्छेहादो।
वेदीणं उस्सेहो, णिद्दिट्ठो सिरिजिणागमम्मि।।41।।

अर्थ–समवशरण में वेदियों का उत्सेध अपने-अपने तीर्थंकरों की देह के उत्सेध से चाण गुणा श्री जिनागम में निर्दिष्ट किया गया है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में वेदियों का उत्सेध (ऊँचाई) क्रमशः 2000 धनुष, 1800 ध., 1600 ध., 1400 ध., 1200 ध., 1000 ध., 800 ध., 600 ध., 400 ध., 360 ध., 320 ध., 280 ध., 240 ध., 200 ध., 180 ध., 160 ध., 140 ध., 120 ध., 100 ध., 80 ध., 60 ध., 40 ध., 36 हाथ, 28 हाथ था।

धूलीसालों का संपूर्ण वर्णन

सव्वपढमे विसालो, पंचवण्णी वट्ट-धूलीसालो।
सुरम्मो केउ-कलाव-चदु-दुआरेहिं संजुत्ता।।42।।

अर्थ–सर्वप्रथम विशाल, पंचवर्णी, वृत्ताकार, सुरम्य, ध्वजों के समूह व चारों द्वारों से युक्त धूलीसाल कोट होता है।

तह बहुरयण-विणिम्मिद-धूलीसालस्स वण्णो धूलीव।
जह रयणायर-मज्झे, होंति बहु-वण्ण-जुद-रयणाणि।।43।।

अर्थ–जिस प्रकार रत्नाकर के मध्य बहुत वर्णों से युक्त रत्न होते हैं उसी प्रकार बहुत रत्नों से विनिर्मित धूलीसाल का वर्ण धूली के समान होता है।

कत्थवि दिस्सदि रत्तं, कत्थ अरुणिमो बाल-दिवायरोव्व।
कत्थवि णील-गगणं व, धवलो पयंडक्कोव्व तहा।।44।।

अंजणगिरीव किण्हो, हरी पत्तंव केसरोव्व पीदो।
सक्कधणुव्व भासेदि, धूलीसालो अघ-हारगो।।45।।

अर्थ–कहीं लाल, कहीं बाल सूर्य के समान अरुणिम, कहीं नील गगन के समान, कहीं प्रचंड सूर्य के समान धवल, कहीं अंजनगिरी के समान कृष्ण, कहीं पत्ते के समान हरा, कहीं केसर के समान दिखाई देता है। पाप का हरण करने वाला धूलीसाल इंद्रधनुष के समान दिखाई देता है।

विजयं च वेजयंतं, जयंतवराजिदा चउ-दाराइं।
पुव्व-पहुदि-दिसासुं हु, विसिट्ठविहवजुदाणि कमसो।।46।।

अर्थ-क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नामक चार द्वार विशिष्ट वैभव से युक्त होते हैं।

चउ-गोउर-दाराइं, सुवण्णमयाइं च रमणीआइं।
देव-णर-मिहुण-जुदाणि, मालादीहि सोहिल्लाइं।।47।।

अर्थ-ये चार गोपुर द्वार सुवर्णमय, रमणीय, देव व मनुष्यों के जोड़ों से युक्त व मालादि से सुशोभित होते हैं।

पत्तेय-गोउर-बहिर-मज्झम्मि दुआर-पासभागेसुं।
मंगलदव्व-णिहि-धूव-घड-संजुदा होंति बहुल्ली।।48।।

अर्थ-प्रत्येक गोपुर के बाहर और मध्यभाग से द्वार के पार्श्व भागों में मंगलद्रव्य, नवनिधि, धूप घटों से संयुक्त पुतलियाँ होती हैं।

अट्ठोत्तर-सयाइं हु समवसरणे भासंति पत्तेयं।
सव्वदा मंगल्लाणि, एदाणि मंगलदव्वाइं।।49।।

अर्थ-सर्वदा मंगलकारी ये मंगलद्रव्य समवशरण में शोभायमान होते हैं एवं प्रत्येक 108-108 होते हैं।

कालो महाकालो य, पंडू माणवग-संख-णेसप्पा।
पिंगल-णाणारयणा, पउमो णवणिही णादव्वा।।50।।

अर्थ-काल, महाकाल, पाण्डु, माणवक, शंख, नैसर्प, पिंगल, नानारत्न व पद्म ये नवनिधि जाननी चाहिए।

तिहुवण-विम्हावया य, सहस्सदेवेहि रक्खिदा सुणिही।
पत्तेयं अट्ठोत्तर-सया सोहंति समवसरणे।।51।।

अर्थ-समवशरण में तीनों लोकों को विस्मित करने वाली, सहस्र देवों से रक्षित नवनिधि समवशरण में शोभायमान होती है। ये नवनिधियाँ प्रत्येक एक सौ आठ होती हैं।

तियालम्मि हु उप्पण्ण-कुसुम-फलाइं च देदुं समत्था।
उडु-जोग्ग-दव्वाइं, जा सा हु काल-णिही णेया।।52।।

अर्थ-जो तीनों कालों में उत्पन्न पुष्प, फल आदि व ऋतु के योग्य द्रव्यों को देने में समर्थ है वह निश्चय से काल निधि जाननी चाहिए।

णाणाविहा हु भोयण-पदत्था मिट्ठिट्ठवंजणाइं च।
भायणप्पहुदीणि जा, देदि सा हु महाकालणिही।।53।।

अर्थ-जो नाना प्रकार के भोजन पदार्थ, मिष्ट-इष्ट व्यंजन और बर्तन आदि देती है वह महाकाल निधि है।

णाणाविह-धण्णं जा, दाएज्जा सोक्खदा णिही पंडू।
चक्कवट्टिस्स अइसय-मणोण्णा विम्हयकारी सा।।54।।

अर्थ-जो चक्रवर्ती के लिए नाना प्रकार के धान्य देती है वह अतिशय मनोज्ञ, विस्मयकारी, सौख्य प्रदान करने वाली पांडु निधि है।

अणेयविहाइं अत्थ-सत्थाइं तहा देदुं समत्था।
जा सा माणवा णिही, सामण्ण-दिव्व-सव्वाइं च।।55।।

अर्थ-जो अनेक प्रकार के सभी सामान्य और दिव्य अस्त्र-शस्त्रों को देने में समर्थ है वह माणव निधि है।

संख-णिहीए लहेदि, तंती-तूर-तुडिअ-मिदंग-पहुदी।
सव्व-वज्ज-जंताइं, चक्कवट्टी सग-पुण्णेणं।।56।।

अर्थ-चक्रवर्ती अपने पुण्य से शंख निधि के माध्यम से वीणा, तुरही, वाद्य, मृदंग आदि सर्व वाद्य यंत्रों को प्राप्त करता है।

पउम-णिहीए लहेदि, सव्व-रिदु-जोग्ग-सयलवत्थाइं च।
अइ-मणोण्ण-दिव्वाइं, देव-रक्खिदाए चक्की हु।।57।।

अर्थ-चक्रवर्ती देव रक्षित पद्म निधि से अति मनोज्ञ, दिव्य, सभी ऋतुओं के योग्य सकल वस्त्रों को प्राप्त करता है।

दाएज्ज विविह-पयार-पासादमंडवा सयणिज्जाइं।
जहाजोग्गं पुण्णेण, तहा जा सा णइसप्प-णिही।।58।।

अर्थ-जो निधि यथायोग्य पुण्य से विविध प्रकार के प्रासाद मंडप तथा शय्या आदि देती है वह नैसर्प निधि है।

पुरिस-णारि-सव्वाणं, केऊर-कंगु-हार-मुद्दगादी।
बहुविह-आभरणाइं, दाएज्जा पिंगला णिही हु।।59।।

अर्थ-जो पिंगल निधि पुरुष, नारी सभी के लिए बाजूबंद, हार, अंगूठी, आदि बहुत प्रकार के आभूषण देती है।

सया समत्था देदुं विविह-मणोहर-रम्म-रयण-णिकरा।
जा सा हु णाणारयण-णिही पुण्णवंतो तं लहदि।।60।।

अर्थ-जो सदा विविध मनोहर रम्य रत्नों के समूह को देने में समर्थ होती है वह नानारत्न निधि कहलाती है। उसे पुण्यवान् ही प्राप्त करता है।

गोसीस-मलयचंदण-कालागरु-आदि-धूवगंध-जुदा।
एगेगो धूवघडो, हवेदि कम्म-दुग्गंध-हरो।।61।।

अर्थ-कर्मों की दुर्गंध को हरने वाला एक-एक धूपघट गोशीर्ष, मलयचंदन कालागरु आदि धूप गंधों से व्याप्त होता है।

लंबंत-घंट-मुत्तिअ-जालाणि पुप्फमाला वड्ढंते।
अणुवमसोहं ताणं, पत्तेयगोउरदारेसुं।।62।।

अर्थ-प्रत्येक गोपुरद्वारों पर लटकते हुए घंटे, मुक्ताओं के जाल, पुष्प माला उनकी अनुपम शोभा को वृद्धिंगत करते हैं।

ताणि गोउरदाराणि, अट्ठमंगलदव्व-वज्ज-जुत्ताणि।
अप्पडिम-सोहिदाणि य, रयणाभरणजुदतोरणेहि।।63।।

अर्थ-वे गोपुर द्वार अष्टमंगल द्रव्य, वाद्य व रत्नाभूषण से युक्त तोरणों से अप्रतिम सुशोभित होते हैं।

धूलिसालस्स गोउर-बाहिरे सयाणि मगर-तोरणाणि।
अब्भंतर-भागम्मि य, सयाइं रयणतोरणाइं।।64।।

अर्थ-धूलीसाल कोट के गोपुरों के बाह्य भाग में सैकड़ों मकर तोरण व अभ्यंतर भाग में सैकड़ों रत्नतोरण होते हैं।

गोउरदार-मज्झम्मि, एगेग-रयणरइय-णट्टसाला।
णच्चंत-देवंगणा-कलाव-जुदा बेपासेसुं।।65।।

अर्थ-गोपुर द्वारों के बीच में दोनों पार्श्व भागों में रत्ननिर्मित, नृत्य करती हुई देवांगनाओं के समूह से युक्त एक-एक नाट्यशाला होती है।

णाणा-कला-पदंसिय-कुव्वंत-जोइस-सुरंगणा तत्थ।
गायंति पुण्ण-वड्ढग-गीदं हरंति सव्व-चित्तं।।66।।

अर्थ-वहाँ नाना कला प्रदर्शित करती हुई ज्योतिष देवांगनाएँ सभी का चित्त हरती हैं व पुण्य वर्द्धक गीत गाती हैं।

चउगोउरदारेसुं, धूलीसालस्स होंति पत्तेयं।
सेट्ठ-रयणदंडजुदा, दुआर-रक्खगा जोइसिया।।67।।

अर्थ-धूलीसाल के चारों गोपुर द्वारों में से प्रत्येक पर श्रेष्ठ रत्नदंड से युक्त ज्योतिष्क देव द्वार रक्षक होते हैं।

चउगोउरदाराणं, बहि-अंतर-भागेसुं संचारणि।
रमणिज्ज-सोवाणाणि, णाणा-रयण-णिम्मिदाइं च।।68।।

अर्थ-चारों गोपुरद्वारों के बाह्य व अभ्यंतर भाग में नाना रत्नों से निर्मित रमणीय संचार योग्य सीढ़ियाँ होती हैं।

णिय-णिय-तित्थयराणं, देहुच्छेहादु होज्ज चउगुणिदो।
धूलीसालुच्छेहो, सव्व-तित्थयर-धम्मसहाइ।।69।।

अर्थ-सभी तीर्थंकरों की धर्मसभा में धूलीसाल कोट की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरों के शरीर की ऊँचाई से चार गुनी होती है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में धूलीसाल कोट की ऊँचाई क्रमशः 2000 धनुष, 1800 ध., 1600 ध., 1400 ध., 1200 ध., 1000 ध., 800 ध., 600 ध., 400 ध., 360 ध., 320 ध., 280 ध., 240 ध., 200 ध., 180 ध., 160 ध., 140 ध., 120 ध., 100 ध., 80 ध., 60 ध., 40 ध., 36 हाथ, 28 हाथ थी।

धूलीसालुदयादो, अहिओ उच्छेहो तोरणाणं च।
सय गोउर-दाराणं, अहिओ तत्तो विआणेज्जा।।70।।

अर्थ–धूलीसालों की ऊँचाई से तोरणों की ऊँचाई अधिक जाननी चाहिए और उससे भी अधिक सदा गोपुरद्वारों की ऊँचाई होती है।

उसहस्स समवसरणे, धूलीसालस्स मूलवित्थारो।
चउचत्ता-समहिद-सय-भाजिदा चउवीस-कोसा हु।।71।।

अर्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र के समवशरण में धूलीसाल कोट का मूल विस्तार 24/144 कोस प्रमाण था।

अग्गे तित्थयरेसुं, एगूणा कमेण णेमि-जिणंतं।
अट्ठासि-अहिय-बेसय-हिदा पंचकोसा पासम्मि।।72।।

अर्थ–आगे तीर्थंकरों के समवशरण में श्री नेमिनाथ पर्यंत धूलीसाल का मूल विस्तार 1–1 कम होता गया। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में 5/288 कोस है।

चउवीसइम-देवस्स, वीरवड्ढमाणस्स समवसरणे।
बाहत्तरि-भाजिदो य, एग-कोसो चिय वित्थारो।।73।।

अर्थ–24वें तीर्थंकर देव श्री वीर वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में धूलीसाल का मूल विस्तार 1/72 कोस था।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में धूलीसाल कोट का मूल विस्तार

क्रमशः $\frac{24}{144}$ कोस, $\frac{23}{144}$ को., $\frac{22}{144}$ को., $\frac{21}{144}$ को., $\frac{20}{144}$ को., $\frac{19}{144}$ को., $\frac{18}{144}$ को., $\frac{17}{144}$ को., $\frac{16}{144}$ को., $\frac{15}{144}$ को., $\frac{14}{144}$ को., $\frac{13}{144}$ को., $\frac{12}{144}$ को., $\frac{11}{144}$ को., $\frac{10}{144}$ को., $\frac{9}{144}$ को., $\frac{8}{144}$ को., $\frac{7}{144}$ को., $\frac{6}{144}$ को., $\frac{5}{144}$ को., $\frac{4}{144}$ को., $\frac{3}{144}$ को., $\frac{5}{288}$ को., $\frac{1}{72}$ कोस था।

धनुष में–$333\frac{1}{3}$ धनुष, $319\frac{4}{9}$, $305\frac{5}{9}$, $291\frac{2}{3}$, $277\frac{7}{9}$, $263\frac{8}{9}$, 250, $236\frac{1}{9}$, $222\frac{2}{9}$, $208\frac{1}{3}$, $194\frac{4}{9}$, $180\frac{5}{9}$, $166\frac{2}{9}$, $152\frac{7}{9}$, $138\frac{8}{9}$, 125, $111\frac{1}{9}$, $97\frac{2}{9}$, $83\frac{1}{3}$, $69\frac{4}{9}$, $55\frac{5}{9}$, $41\frac{2}{3}$, $34\frac{13}{18}$, $27\frac{7}{9}$ धनुष था।

धूलीसालाण मज्झ-उवरिम-भाग-वित्थार-उवएसो।
अलद्धो कालवसेण, संपइ पमाणाभावेणं।।74।।

अर्थ–वर्तमान में काल वश प्रमाण के अभाव से धूलीसालों के मध्य व उपरिम भाग के विस्तार का उपदेश अलब्ध है।

चैत्यप्रासाद भूमि प्ररूपण

अब्भंतरम्मि चेइय-पासाद-भूमी धूलीसालस्स।
पावमलहारगा जिण-भवण-पासाद-संजुत्ता य।।75।।

अर्थ–धूलीसाल कोट के अभ्यंतर भाग में जिनभवनों व प्रासादों से संयुक्त पाप मल हारक चैत्य प्रासाद भूमि है।

एगेगं जिणभवणं, पंच-पंच-पासाद-अंतरिदा य।
तेसुं ठिद-जिणपडिमा, कम्म-विणासगा भव्वाणं।।76।।

अर्थ–यहाँ पाँच-पाँच प्रासादों के अंतराल से एक-एक जिनभवन है उनमें स्थित जिन प्रतिमा भव्यों के कर्मों की विनाशक हैं।

णाणा-काणण-कलाव-मंडिदा सेट्ठ-वावि-कूव-रम्मा।
भव्वचित्तागरिसगा, पढम-चेइय-पासाद-धरा।।77।।

अर्थ–प्रथम चैत्य प्रासाद भूमि नाना वनों के समूहों से मंडित, श्रेष्ठ वापिकाओं व कूँओं से रम्य व भव्यों के चित्त को आकर्षित करने वाली है।

चेइय-पासादा जे, विज्जंति चेइय-पासाद-धराइ।
बेदहगुणिदुत्तुंगा, ते सग-सग-तित्थयरादो हु।।78।।

अर्थ–चैत्य प्रासाद भूमि में जो चैत्य व प्रासाद विद्यमान हैं वे अपने अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई से 12 गुने उत्तुंग हैं।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में चैत्यप्रसाद भूमि में विद्यमान चैत्य व प्रासादों की ऊँचाई क्रमशः 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष थी।

चेइय-पासादाणं, उवएसो रुंदि-वित्थाराणं च।
णट्ठो अस्सिं काले, चेइय-पासाद-भूमीए।।79।।

अर्थ–चैत्य प्रासाद भूमि के चैत्य व प्रासादों की लम्बाई व विस्तार का उपदेश इस काल में नष्ट हो गया है।

छस्सयरि-अहिय-पणसय-भाजिद-बेसयचउसट्ठि-जोजणं।
उसहस्स समवसरणे, पढम-पुढवीए वित्थारो।।80।।

अर्थ–श्री ऋषभनाथ जी के समवशरण में प्रथम पृथिवी का विस्तार छिहत्तर अधिक पाँच सौ से भाजित दो सौ चौसठ 264/576 योजन था।

एयारस-हीणं पुण, कमसो सिरिणेमिणाह-पेरंतं।
पढम-भूमि-वित्थारो, सण्णाणीहिं मुणेदव्वो।।81।।

अर्थ-पुनः श्री नेमिनाथ जिनेंद्र पर्यंत क्रमशः (भाज्य राशि में से) ग्यारह कम होता गया। ऐसा प्रथम भूमियों का विस्तार सम्यग्ज्ञानियों को जानना चाहिए।

अट्ठासि-अहिय-बेसय-विभत्त पणवण्ण-कोसा पासम्मि।
बारसवग्गेहि हिदा, बावीस-कोसा हु वीरम्मि।।82।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में अट्ठासी अधिक दो सौ से विभक्त पचपन अर्थात् 55/288 कोस एवं श्री वीर प्रभु के समवशरण में बारह के वर्ग से भाजित बाईस अर्थात् 22/144 कोस था।

विशेषार्थ-श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में प्रथम पृथ्वी का विस्तार क्रमशः- $\frac{264}{576}$ योजन, $\frac{253}{576}$ यो., $\frac{242}{576}$ यो., $\frac{231}{576}$ यो., $\frac{220}{576}$ यो., $\frac{209}{576}$ यो., $\frac{198}{576}$ यो., $\frac{187}{576}$ यो., $\frac{176}{576}$ यो., $\frac{165}{576}$ यो., $\frac{154}{576}$ यो., $\frac{143}{576}$ यो., $\frac{132}{576}$ यो., $\frac{121}{576}$ यो., $\frac{110}{576}$ यो., $\frac{99}{576}$ यो., $\frac{88}{576}$ यो., $\frac{77}{576}$ यो., $\frac{66}{576}$ यो., $\frac{55}{576}$ यो., $\frac{44}{576}$ यो., $\frac{33}{576}$ यो., $\frac{55}{288}$ कोस, $\frac{22}{144}$ कोस था।

नाट्यशालाओं का निरूपण

सव्वपढम-भूमीए, चउवीहीण बे-पासभागेसुं।
वर-हेम-रयण-णिम्मिद-बे-बे सुहग-णट्टयसाला।।83।।

अर्थ-सर्वप्रथम भूमि अर्थात् चैत्य प्रासाद भूमि में चारों वीथियों के दोनों

पार्श्व भागों में उत्कृष्ट स्वर्ण व रत्न से निर्मित दो दो सुभग नाट्यशालाएँ होती हैं।

णट्टयसाला-उदयो, सग-सग तित्थयराण उच्छेहादु।
होज्जा बेदहगुणिदो, रुंदि-वित्थारा तह णट्ठा।।84।।

अर्थ-नाट्यशाला की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारह गुनी होती है। इनकी लंबाई व विस्तार नष्ट हो चुका है।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में नाट्यशाला की ऊँचाई क्रमशः 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध.,960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष थी।

चउगुणिद-बेघण-रंग-खिदी पत्तेयं णट्टयसालाइ।
पत्तेयं रंगम्मि य, बत्तीस-भवणवासि-कण्णा।।85।।

अर्थ-प्रत्येक नाट्यशाला में दो के घन से चार गुनी अर्थात् 32 रंगभूमियाँ हैं और प्रत्येक रंगभूमि में (उतनी ही) 32 भवनवासी कन्याएँ हैं।

तत्थ भावण-कण्णाउ, पणच्चंति विविह-हास-विलासेहि।
मोदणत्थं जिणथुदिं, गंति च पुप्फंजलिं खिवंति।।86।।

अर्थ-वहाँ भवनवासी कन्याएँ विविध हास विलास पूर्वक नृत्य करती हैं, मोद के लिए जिनेन्द्र स्तुति गाती हैं और पुष्पांजलि क्षेपण करती हैं।

बे-बे सुह-धूवघडा, होज्ज पत्तेयं णट्टयसालाइ।
सुगंधिद-धूव-जुत्ता, दिसिमंडल-वासिदा णिच्चं।।87।।

अर्थ-प्रत्येक नाट्यशाला में सुगंधित धूपों से युक्त दिग्मंडल को सुवासित करने वाले नित्य दो-दो शुभ धूपघट होते हैं।

मानस्तंभ निरूपण

पढम-खिदीइ बहुमज्झ-भागम्मि तहा चउवीहि-मज्झम्मि।
वट्टा माणत्थंभा, सव्व-माण-खंडिदा णिच्चं।।88।।

अर्थ-प्रथम चैत्य प्रासाद भूमि के बहुमध्य भाग तथा चारों वीथियों के मध्य में नित्य सभी के मान को खंडित करने वाले मानस्तंभ होते हैं।

देवासुर-णर-पूजिद-मायास-फासिद-सोहिद-सुरम्मा।
चउदिसासु पीठिगासु, सहाइ विसाल-माणत्थंभा।।89।

णाणावण्णि-सुगंधिद-पुप्फाणं विज्जेज्जा उवहारो।
सिरिजिणवर-पूयत्थं, रयणखचिदासु पीठिगासुं।।90।।

अर्थ-समवशरण में चारों दिशाओं में, पीठिकाओं पर देव, असुर, मनुष्यों से पूजित, आकाश को स्पर्श करने वाले सुरम्य विशाल मानस्तंभ हैं। इन रत्नखचित पीठिकाओं पर श्री जिनेन्द्र प्रभु की पूजन के लिए नाना रंग वाले, सुगंधित, पुष्पों का उपहार विद्यमान रहता है।

विउलविहवसंपण्णा, घंडा-चामराइ-लक्खण-सहिदा।
दिसेभोव्व चउथंभा, अट्ठपडिहारविहूदिजुदा।।91।।

अर्थ-वे विपुल वैभव से संपन्न, घंटा, चँवर आदि लक्षण से सहित, अष्टप्रातिहार्य से संयुक्त चार मानस्तंभ दिग्गज के समान सुशोभित होते हैं।

भासंति अणंतचदुट्ठयं व चउमाणत्थंभा जिणस्स।
चउविहमाणसामगा, चउ-पुरिसत्थ-फलदायगा य।।92।।

अर्थ-चारों प्रकार के मान के शामक, चारों पुरुषार्थों के फलदायक जिनेन्द्र भगवान् के चार मानस्तंभ अनंत चतुष्टय के समान सुशोभित होते हैं।

इंदकिदविहूदि-सहिद-सुंदरा इंदेहि णिम्मिदथंभा।
इंदद्धय-सण्णाजुद-समत्था देदुमिंदविहवं।।93।।

अर्थ-इंद्रकृत विभूति से सहित, इंद्रों के द्वारा निर्मित सुंदर मानस्तंभ इंद्रध्वज संज्ञा से युक्त हुए और वे इंद्र के वैभव को देने में समर्थ हैं।

पत्तेय-माणथंभो, ति-साल-वेट्ठिद-गोउर-दार-जुदो।
सोहेदि पीठत्तये, भव्वाणं सुहकरो णिच्चं।।94।।

अर्थ-भव्यों के लिए नित्य सुखकर प्रत्येक मानस्तंभ गोपुरद्वार युक्त तीन कोटों से वेष्टित व पीठत्रय पर सुशोभित होता है।

ताण मज्झ-भागे अवि, सुर-किण्णर-मिहुण-जुदा वणखंडा।
कोकिल-कलकल-जुत्ता, विविह-दिव्व-रुक्ख-संकिण्णा।।95।।

अर्थ-उनके मध्य भाग में भी सुर-किन्नरों के युगलों से युक्त कोयल के कलरवों से संयुक्त व विविध दिव्य वृक्षों से संकीर्ण वनखंड हैं।

ताण मज्झे सोम-जम-वरुण-कुबेराण लोयपालाणं।
होज्ज पुव्वादि-दिसासु, महाकीडण-पुराणि कमसो।।96।।

अर्थ-उनके मध्य में पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः सोम, यम, वरुण व कुबेर इन लोकपालों के महाक्रीड़नपुर होते हैं।

ताणं अब्भंतरम्मि, चउ-गोउरादि-वेट्ठिदो सालोत्थि।
तस्सग्गे वण-वावी, णील-उप्पल-संजुत्ता तह।।97।।

अर्थ-उनके अभ्यंतर भाग में चार गोपुर आदि से वेष्टित कोट है तथा उसके आगे नील कमलों से युक्त वन वापिकाएँ होती हैं।

ताणं मज्झे हवेंति, णिय-णिय-दिसासुं अवि विदिसासुं च।
दिव्व-रमणिज्ज-कीडण-णयराइं लोयपालाणं।।98।।

अर्थ-उनके बीच में लोकपालों के निज-निज दिशाओं में और विदिशाओं में भी दिव्य रमणीय क्रीड़ा नगर होते हैं।

ताणं अब्भंतरम्मि, चउगोउर-दार-जुद-तिदिय-सालो।
तस्स मज्झभागम्मि य, हवेंति सुरम्म-तिय-पीढाणि।।99।।

अर्थ-उनके अभ्यंतर भाग में चार गोपुर द्वारों से युक्त तृतीय कोट होता है, उसके मध्य भाग में तीन सुरमणीय पीठ होती हैं।

पढमपीढं वेरुलिय-मयं विदियं सुवण्णमयं होज्जा।
तस्सोवरि तिदियं तह, णाणा-वण्ण-रयण-रइदं हु।।100।।

अर्थ-इनमें प्रथम पीठ वैडूर्यमणिमय, उसके ऊपर दूसरा पीठ स्वर्णमय तथा उसके ऊपर तृतीय पीठ नाना वर्णों के रत्नों से निर्मित होता है।

पढम-पीढ-उच्छेहो, ति-भाजिद-चउवीस-दंड-पमाणं।
उसहस्स समवसरणे, अहहारग-माणत्थंभस्स।।101।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ भगवान् के समवशरण में पाप हारक मानस्तंभ की प्रथम पीठ की ऊँचाई तीन से भाजित चौबीस 24/3 धनुष प्रमाण थी।

पुण कमेण एगूणा, जिणवर-सिरि-णेमिणाह-पेरंतं।
पासे छ-भाजिद-पंच-दंडा पढमपीढुच्छेहो।।102।।

अर्थ-पुन: इसके आगे जिनवर श्री नेमिनाथ पर्यंत क्रमश: उतरोत्तर एक-एक अंक कम होता गया। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में प्रथम पीठ की ऊँचाई छ: से भाजित पाँच (5/6) धनुष थी।

सहाए य वट्टमाण-सासण-णायग-वड्ढमाणजिणस्स।
तिण्णि-भाजिदा य दोण्णि-दंडा पढमपीढस्सुदयो।।103।।

अर्थ-वर्तमान शासन नायक श्री वर्द्धमान जिन की सभा में प्रथम पीठ की ऊँचाई तीन से भाजित दो (2/3) धनुष थी।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में मानस्तम्भ की प्रथम पीठ की ऊँचाई

क्रमश:- $\frac{24}{3}$ धनुष, $\frac{23}{3}$ ध., $\frac{22}{3}$ ध., $\frac{21}{3}$ ध., $\frac{20}{3}$ ध., $\frac{19}{3}$ ध., $\frac{18}{3}$ ध., $\frac{17}{3}$ ध., $\frac{16}{3}$ ध., $\frac{15}{3}$ ध., $\frac{14}{3}$ ध., $\frac{13}{3}$ ध., $\frac{12}{3}$ ध., $\frac{11}{3}$ ध., $\frac{10}{3}$ ध., $\frac{9}{3}$ ध., $\frac{8}{3}$ ध., $\frac{7}{3}$ ध., $\frac{6}{3}$ ध., $\frac{5}{3}$ ध.,

$\frac{4}{3}$ ध., $\frac{3}{3}$ ध., $\frac{5}{6}$ ध., $\frac{2}{3}$ धनुष थी।

विदिय-तिदिय-पीढाणं, सेसाणं उच्छेहो णाणीहिं।
अद्धो य मुणेदव्वो, पढम-पीढस्स य उदयादो।।104।।

अर्थ-ज्ञानियों को शेष द्वितीय व तृतीय पीठों की ऊँचाई प्रथम पीठ की ऊँचाई से आधी जाननी चाहिए।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत सभी तीर्थंकरों के समवशरण में द्वितीय व तृतीय पीठ की ऊँचाई क्रमशः $\frac{24}{6}$ अर्थात् 4 धनुष, $\frac{23}{6}$ ध., $\frac{22}{6}$ ध., $\frac{21}{6}$ ध., $\frac{20}{6}$ ध., $\frac{19}{6}$ ध., $\frac{18}{6}$ ध., $\frac{17}{6}$ ध., $\frac{16}{6}$ ध., $\frac{15}{6}$ ध., $\frac{14}{6}$ ध., $\frac{13}{6}$ ध., $\frac{12}{6}$ ध., $\frac{11}{6}$ ध., $\frac{10}{6}$ ध., $\frac{9}{6}$ ध., $\frac{8}{6}$ ध., $\frac{7}{6}$ ध., $\frac{6}{6}$ ध., $\frac{5}{6}$ ध., $\frac{4}{6}$ ध., $\frac{3}{6}$ ध., $\frac{5}{12}$ ध., $\frac{2}{6}$ धनुष थी।

चउ-दिसासुं च आदिम-पीढस्स होंति अट्ठ-सोवाणाणि।
विदिये तिदिये कमसो, चउ-चउ-सोवाणाइं जाण।।105।।

अर्थ-प्रथम पीठ की चारों दिशाओं में आठ सोपान होते हैं। द्वितीय और तृतीय पीठ पर क्रमशः चार-चार सोपान जानने चाहिए।

ताणं सोवाणाणं, दीहत्त-वित्थाराण उवएसो।
णट्ठो काल-वसेणं, अम्हाणं जिणो हि जाणेदि।।106।।

अर्थ-उन सोपानों की दीर्घता व विस्तार का उपदेश काल के वश से हमारे लिए नष्ट हो चुका है, जिनेन्द्र भगवान् ही उसे जानते हैं।

माणत्थंभाण पढम-विदिय-पीढाण वित्थारो णट्ठो।
इह याले ण केवली, तम्हा असक्का जाणेदुं।।107।।

अर्थ–मानस्तंभों के प्रथम, द्वितीय पीठों का विस्तार नष्ट हो चुका है। इस काल में केवली नहीं है इसीलिए उसको जानने में असमर्थ हैं।

उसहस्स समवसरणे, तिदिय-पीढस्स णेयो वित्थारो।
तिय-भाजिद-ति-सहस्सा, दंडा हु माणत्थंभाणं।।108।।

अर्थ–श्री ऋषभनाथ भगवान् के समवशरण में मानस्तंभों की तृतीय पीठ का विस्तार तीन से भाजित तीन हजार 3000/3 धनुष जानना चाहिए।

णेमिणाह-पेरंतं, कमसो पणवीसुत्तर-सय-णूणा।
छ-हिद-पणवीस-समहिद-छस्सया दंडा हु पासम्मि।।109।।

अर्थ–पुनः श्री नेमिनाथ जिन पर्यंत क्रमशः एक सौ पच्चीस कम होता जाता है। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में छः से विभाजित छ सौ पच्चीस 625/6 धनुष जानना चाहिए।

वड्ढमाणस्स हु धम्म-सहाए य तिदिय-पीढ-वित्थारो।
छब्भाजिद-पंच-सया, दंडा भासिदो जिणसमये।।110।।

अर्थ–श्री वर्द्धमान स्वामी की धर्म सभा में मानस्तंभ की तृतीय पीठ का विस्तार 6 से भाजित पाँच सौ 500/6 धनुष जिनागम में कहा गया है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेन्द्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में मानस्तम्भों की तृतीय पीठ का विस्तार क्रमशः– $\frac{3000}{3}$ धनुष, $\frac{2875}{3}$ ध., $\frac{2750}{3}$ ध., $\frac{2625}{3}$ ध., $\frac{2500}{3}$ ध., $\frac{2375}{3}$ ध., $\frac{2250}{3}$ ध., $\frac{2125}{3}$ ध., $\frac{2000}{3}$ ध., $\frac{1875}{3}$ ध., $\frac{1750}{3}$ ध., $\frac{1625}{3}$ ध., $\frac{1500}{3}$ ध., $\frac{1375}{3}$ ध., $\frac{1250}{3}$ ध., $\frac{1125}{3}$ ध., $\frac{1000}{3}$ ध., $\frac{875}{3}$ ध., $\frac{750}{3}$ ध., $\frac{625}{3}$ ध., $\frac{500}{3}$ ध.,

$\frac{375}{3}$ ध., $\frac{625}{6}$ ध., $\frac{500}{6}$ धनुष था।

ताणुवरि रयण-खचिदा, सुहगा-माणत्थंभा विज्जंते।
तिहुवण-विम्हावया य, माणप्पणासगा हु णिच्चं।।111।।

अर्थ-उनके ऊपर रत्न खचित, त्रिभुवन विस्मयकारक व मान प्रणाशक सुभग मानस्तंभ विद्यमान होते हैं।

चउवीस-हरिद-णवसय-बावण्णाहिय-तेवीस-सहस्सा।
दंडा खलु बाहवलं, ताण उसहस्स समवसरणे।।112।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ जी के समवशरण में उन मानस्तंभों का बाहल्य चौबीस से भाजित नौ सौ बावन अधिक तेईस हजार 23952/24 धनुष है।

पुण णेमि-जिणवरंतं, अट्ठणउदि-समहिद-णवसय-णूणा।
कमसो सुपुण्ण-कारग-माणत्थंभ-बाहल्लं खलु।।113।।

अर्थ-पुनः सुपुण्य कारक मानस्तंभ का बाहल्य श्री नेमिनाथ जिनवर पर्यंत नौ सौ अट्ठानवे अधिक नौ सौ (998) कम होता जाता है।

पंचणउदि-समहिद-चउवीस-सय-दंड-चउवीस-विभत्ता।
पासस्स समवसरणे, माणत्थंभस्स बाहल्लं।।114।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में मानस्तंभ का बाहल्य चौबीस से विभक्त पचानवें अधिक चौबीस सो (2495/24) धनुष था।

छब्भाजिदा एगूण-पंच-सया दंडा वड्ढमाणस्स।
पसत्थ-समवसरणम्मि, बाहल्लं थंभस्स णेयं।।115।।

अर्थ-श्री वर्द्धमान स्वामी के प्रशस्त समवशरण में मानस्तंभ का बाहल्य छः से भाजित एक कम पाँच सौ (499/6) धनुष जानना चाहिए।

विशेषार्थ-श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत समवशरण में मानस्तम्भों का बाहल्य क्रमशः- $\frac{23952}{24}$ धनुष,

$\frac{22954}{24}$ ध., $\frac{21956}{24}$ ध., $\frac{20958}{24}$ ध., $\frac{19960}{24}$ ध., $\frac{18962}{24}$ ध., $\frac{17964}{24}$ ध., $\frac{16966}{24}$ ध., $\frac{15968}{24}$ ध., $\frac{14970}{24}$ ध., $\frac{13972}{24}$ ध., $\frac{12974}{24}$ ध., $\frac{11976}{24}$ ध., $\frac{10978}{24}$ ध., $\frac{9980}{24}$ ध., $\frac{8982}{24}$ ध., $\frac{7984}{24}$ ध., $\frac{6986}{24}$ ध., $\frac{5988}{24}$ ध., $\frac{4990}{24}$ ध., $\frac{3992}{24}$ ध., $\frac{2994}{24}$ ध., $\frac{2495}{24}$ ध., $\frac{499}{26}$ धनुष था।

णिय-णिय-तित्थयराणं, अवगाहणादु माणत्थंभाणं।
बारस-गुणिदो णिच्चं, उच्छेहो चिय मुणेदव्वो।।116।।

अर्थ–मानस्तंभों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरों की अवगाहना से 12 गुनी जाननी चाहिए।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में मानस्तम्भों की ऊँचाई क्रमशः 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष थी।

साहिय-एगजोयणं, उसह-माणत्थंभुदयो हु कमसो।
सेस-जिणेसुं हीणो, कइविय-आइरियणुसारेण।।117।।

अर्थ–कुछ आचार्यों के अनुसार श्री ऋषभनाथ के समवशरण में मानस्तंभ की ऊँचाई कुछ अधिक 1 योजन थी तथा शेष तीर्थंकरों की कम होती गयी।

विशेषार्थ–पाठान्तर से कुछ आचार्यों के अनुसार श्री ऋषभदेव से महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में मानस्तम्भों की

ऊँचाई क्रमशः $\frac{24}{24}$ योजन, $\frac{23}{24}$ यो., $\frac{22}{24}$ यो., $\frac{21}{24}$ यो., $\frac{20}{24}$ यो., $\frac{19}{24}$ यो., $\frac{18}{24}$ यो., $\frac{17}{24}$ यो., $\frac{16}{24}$ यो., $\frac{15}{24}$ यो., $\frac{14}{24}$ यो., $\frac{13}{24}$ यो., $\frac{12}{24}$ यो., $\frac{11}{24}$ यो., $\frac{10}{24}$ यो., $\frac{9}{24}$ यो., $\frac{8}{24}$ यो., $\frac{7}{24}$ यो., $\frac{6}{24}$ यो., $\frac{5}{24}$ यो., $\frac{4}{24}$ यो., $\frac{3}{24}$ यो., $\frac{5}{48}$ यो., $\frac{4}{48}$ योजन थी।

पत्तेयं थंभस्स हु, मूल-भागो दोण्णि-सहस्स-दंडा।
मज्झिमो दगणिम्मिदो, उवरिमो वेरुलिय-खचिदो य।।118।।

अर्थ-प्रत्येक मानस्तंभ का मूल भाग 2000 धनुष, मध्यम भाग स्फटिक रत्न से निर्मित और उपरिम भाग वैडूर्यमणि से खचित था।

वज्ज-दुआराणि होंति, थंभमूलम्मि य मज्झिमो वट्टो।
उवरिमो सोहिदो धय-चामर-किंकिणि-घंटादीहि।।119।।

अर्थ-मानस्तंभ के मूल में वज्र के द्वार होते हैं, मध्यम वलयाकार और उपरिम भाग ध्वजा, चँवर, किंकिणी व घंटा आदि से सुशोभित होता है।

मूले उवरिमभागे, चउदिसासुं तहा माणथंभस्स।
अट्ठ-पाडिहेर-जुदा, एगेगा जिणपडिच्छंदा।।120।।

अर्थ-मानस्तंभ के मूल व उपरिम भाग में चारों दिशाओं में अष्ट प्रातिहार्य से युक्त एक-एक जिन प्रतिमा होती है।

अइमणोहर-गदराय-रयणमय-जिणवरिंदपडिमाओ हु।
सुह-पुण्ण-कारगाओ, सम्मत्ताइ-गुण-हेदू अवि।।121।।

अर्थ-जिनवरेंद्र की अतिमनोहर, वीतराग, रत्नमय प्रतिमाएँ शुभ पुण्य की कारक एवं सम्यक्त्वादि गुणों की हेतु भी हैं।

माण-हारगो णिच्चं, अणंताणुबंधाइ-खंडगो तह।
अप्प-सम्माण-कारग-माणत्थंभो वंदणीयो।।122।।

अर्थ–मान का हारक, अनंतानुबंधि आदि का खंडन करने वाला, आत्म सम्मान का कारक मानस्तंभ नित्य वंदनीय है।

थंभस्स हु तिण्णि-साल-बाहिरेसु चउदिसासुं सुरम्मा।
णिम्मल-जल-संजुत्ता, होज्जा चउवावी कमेणं।।123।।

अर्थ–मानस्तंभ के तीनों कोटों के बाहर चारों दिशाओं में क्रम से निर्मल जल से संयुक्त, सुरम्य चार वापिकाएँ होती हैं।

मुणिचित्तं इव णिम्मल-णीरजुदा भासंति महावावी।
भूमि-णिम्मिद-णयणं व, पस्सेदुं हु जिणवर-विहवं।।124।।

अर्थ–मुनि के चित्त के समान निर्मल नीर से युक्त महावापी ऐसे सुशोभित होती हैं जैसे जिनवर के वैभव को देखने के लिए भूमि ने नयनों का निर्माण किया हो।

णिम्मलायंसरूवं चित्तसुद्धिकारगजलं वावीण।
वइरं व कंतिजुत्तं, ण होदि कस्स मणविसुद्धीइ।।125।।

अर्थ–निर्मल आदर्श रूप, चित्त की शुद्धि का कारक, हीरे के समान कांति से युक्त वापियों का जल किसके मन की विशुद्धि के लिए नहीं होता।

वावीणं णीर-झुणी, भासदि जयघोसोव्व तित्थयरस्स।
कल्लोल-जुत्तणीरं, गगणंगणे इंदभवणं व।।126।।

अर्थ–वापिकाओं के जल की ध्वनि तीर्थंकर की जयघोष के समान शोभित होती है। तरंगों से युक्त वह नीर गंगनांगन में इंद्र भवन के समान प्रतीत होता है।

पुव्व-माणत्थंभस्स, पुव्वादि-दिसासुं णंदोत्तरा य।
णंदा णंदिमदी तह, णंदिघोसा चउ-दहा होंति।।127।।

अर्थ–पूर्व दिशागत मानस्तंभ की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः नंदोत्तरा, नंदा, नंदिमती तथा नंदिघोषा चार द्रह होते हैं।

दक्खिण-माणथंभस्स, पुव्वादि-दिसासुं विजया वावी।
वइजयंता जयंता, अवराजिदा य जहक्कमेण।।128।।

अर्थ-दक्षिण मानस्तंभ के पूर्वादि दिशाओं में यथाक्रम से विजया, वैजयंत, जयंत व अपराजित नामक वापिकाएँ होती हैं।

पच्छिम-माणथंभस्स, पुव्वादि-दिसासु कमसो असोगा।
सुप्पडिबुद्धा कुमुदा, पुंडरीगा णामेहि दहा।।129।।

अर्थ-पश्चिम मानस्तंभ की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः अशोक, सुप्रतिबुद्ध, कुमुद व पुंडरीक नामक द्रह हैं।

उत्तर-माणथंभस्स, पुव्वादि-दिसासुं हिदयाणंदा।
महाणंदा य सुप्पडिबुद्धा पहंकरा सुवावी।।130।।

अर्थ-उत्तर मानस्तंभ की पूर्वादि दिशाओं में हृदयानंद, महानंद, सुप्रतिबुद्ध और प्रभंकरा नामक सुवापिकाएँ हैं।

वावी टंकुक्किण्णा, समचउरंसा सुरयण-णिम्मिदा य।
तोरण-रयणमालाहि, सुसोहिदा सरसिरुह-सहिदा।।131।।

अर्थ-वापिकाऐं टंकोत्कीर्ण, समचतुरस्र, सरत्नों से निर्मित कमलों से सहित, तोरण-रत्नमाला से सुशोभित होती हैं।

ताण जलं अइ-उज्जलं, सीयलं देहमल-पक्खालगं च।
विद्देसस्स हारगं, पीदि-वड्ढगं पीद-जुत्तं।।132।।

अर्थ-उनका जल अति उज्ज्वल, शीतल, देह मल का प्रक्षालन करने वाला विद्वेष हारक, प्रीति वर्द्धक व पीत वर्णी होता है।

वावीण चउतडेसुं, जलकेलीइ दिव्व-वत्थु-पुण्णाणि।
खेद-हारग-मणिखचिद-रमणिज्ज-सोवाणाणि होंति।।133।।

अर्थ-वापिकाओं के चारों तटों पर जलक्रीड़ा के लिए दिव्य वस्तुओं से परिपूर्ण, खेद हारक, मणियों से खचित रमणीय सोपान होते हैं।

तेसुं सोवाणेसुं हंसजुगल-मोर-सुअ-सारसाणं।
कोइल-गय-उसह-अस्स-सीहाइ-पसूण चित्ताइं।।134।।

अर्थ-उन सीढ़ियों पर हंस युगल, मोर, तोते, सारस, कोयल, हाथी, वृषभ, अश्व, सिंह आदि पशुओं के चित्र बने हुए थे।

एआसु वावीसु चदु-णिकायाण देवा उब्भावंते।
पीदासुं णर-किण्णर-मिहुणाण कुंकुम-पंकेणं।।135।।

अर्थ-नर, किन्नर के युगलों के (देह से निःसृत) कुंकुम पंक के द्वारा पीत इन वापियों में चारों निकायों के देव क्रीड़ा करते हैं।

पत्तेय-दहासिदाणि, उज्जल-जल-पुण्ण-बे-बे-कुंडाणि।
णर-सुर-तिरिया धोविय, णिय-पदा पविसंति सहाए।।136।।

अर्थ-प्रत्येक द्रहों से आश्रित उज्ज्वल जल से परिपूर्ण दो-दो कुंड होते हैं। जिनमें नर, सुर, तिर्यंच अपने पैरों को धोकर सभा में प्रवेश करते हैं।

के वि सूरी मणंते, माणथंभस्स जिणपडिमाण सुरा।
खीरसिंधुणीरेणं, कुणंति अहिसेग मघखयिदुं।।137।।

अर्थ-देव पाप क्षय के लिए क्षीर सिंधु के जल से मानस्तंभ की जिनप्रतिमाओं का अभिषेक करते हैं ऐसा कितने ही आचार्य मानते हैं।

कडुअ वंदणं-पूयण-मच्चणं जिण-भत्ति-अणुरायेणं।
विम्हयकारग-पुण्णं, णियमा पावंति सुर-भव्वा।।138।।

अर्थ-देव व भव्य जीव जिनभक्ति के अनुराग से जिनेंद्र प्रभु की वंदना, पूजन, अर्चन करके नियम से विस्मयकारक पुण्य प्राप्त करते हैं।

इत्थं संपुण्ण-विहव-जुद-थंभ-कम्मक्क-अत्थ-कारगा य।
सुहोदहिं वड्ढेदुं, पुण्णिंदुव्व विसुद्धि-हेदू।।139।।

अर्थ-इस प्रकार संपूर्ण वैभव से युक्त मानस्तंभ कर्म रूपी अर्क के अस्त के कारक, सुखोदधि की वृद्धि के लिए पूर्णेन्दु के समान, विशुद्धि के हेतु हैं।

जे के वि भव्वसमणा, सावया कुणंते अयलभत्तिं च।
पाविदुं ते समत्था, इंदाइविहवमचिरयाले।।140।।

अर्थ–जो कोई भी भव्य श्रमण और श्रावक जिन–मानस्तंभों की अचलभक्ति करते हैं वे शीघ्र इंद्रादि वैभव को पाने में समर्थ होते हैं।

प्रथम वेदी निरूपण

आदिम–वेदी हवेदि, रयण–घंटा–तोरण–धया–जुत्ता।
सव्व–समवसरणेसुं, तलयागारा य मंगल्ला।।141।।

अर्थ–सभी समवशरणों में रत्नमय घंटा, तोरण व ध्वजों से युक्त वलयाकार मंगलकारी प्रथम वेदि होती है।

रयण–जडिद–वेदी सा, हवंति णिस्सीम–विहव–संपण्णा।
पुत्तलिय–मंगलदव्व–गोउरदार–णवणिहि–जुत्ता।।142।।

अर्थ–वे रत्न जड़ित वेदियाँ निःसीम वैभव से संपन्न, पुत्तलिया, मंगलद्रव्य, गोपुर द्वार व नवनिधि से युक्त होते हैं।

मूलोवरिम–भागाण, वित्थारो एआणं वेदीणं।
मूल–वित्थार–सरिसो, णिय–णिय–धूलीसालाणं च।।143।।

अर्थ–इन वेदियों के मूल व उपरिम भागों का विस्तार अपने–अपने धूलीसालों के मूल विस्तार सदृश होता है।

खातिका भूमि निरूपण

पढमवेदीइ अग्गे, विदियभूमी खाइया–णामेणं।
विक्खादा णिम्मलजल–पूरिद–खाइया–खेत्ताइं।।144।।

अर्थ–प्रथम वेदी के आगे द्वितीय भूमि खातिका नाम से विख्यात है। वे खातिका क्षेत्र निर्मल जल से पूरित हैं।

खाइया ता विहसंत-कुमुद-कुवलय-उप्पलवण-सोहिदा।
मणिमय-सोवाणेहिं, संजुदा हंसादि-पक्खीहि।।145।।

अर्थ-वे खातिका खिले हुए कुमुद, कुवलय, कमल वन से सुशोभित तथा मणिमय सोपान व हंस आदि पक्षियों से संयुक्त होती हैं।

फडिग-सरिस-सच्छेणं, जलेण पूरिदा सोहिदा वावी।
गगणंगणे गोट्ठिजुद-चंदपरिवारोव्व विमला हु।।146।।

अर्थ-स्फटिक मणि के समान स्वच्छ जल से पूरित निर्मल वापिका गगनांगन में गोष्ठी युक्त चंद्र परिवार के समान सुशोभित होती है।

महु-अहिलासी जीवा, महुअर-महुमक्खिआदी विअरंति।
उववणे जह तह जले, दिस्संति सुरविमाण-छाया।।147।।

अर्थ-जिस प्रकार भ्रमर, मधुमक्खी आदि मधु अभिलाषी जीव उपवन में विचरण करते हैं उसी प्रकार जल में देव विमानों की छाया दिखाई पड़ती है।

सोहंति कुलायलाण, पस्सभागोव्व हु जंबूदीवस्स।
तडा खादिगाइ तत्थ, सुहाकिदीण भवणचित्ताणि।।148।।

अर्थ-खातिका के तट जंबूद्वीप के कुलाचलों के पार्श्व भाग के समान सुशोभित होते हैं अर्थात् जिस प्रकार कुलाचलों के पार्श्व भाग नाना मणियों से रत्नजड़ित हैं उसी प्रकार खातिका के तट भी नाना रत्न व मणियों से युक्त हैं तथा वहाँ शुभाकृति के सुरविमानों के चित्र सुशोभित होते हैं।

आयास-सुरसरिव्व हु, मेहलव्व वसुंधराए अहवा।
भासदि खादिगामही, तित्थयरस्स धम्मसहाए।।149।।

अर्थ-तीर्थंकर भगवान् के समवशरण में खातिका भूमि आकाश गंगा के समान अथवा पृथ्वी की करधनी के समान सुशोभित होती है।

पवणेण ताडिद-जलं, सोहदि जिणभत्तीइ णच्चंतं व।
णेउरिल्ल-सुमहुर-झुणि-संजुत्तं तह फडिगमणीव।।150।।

अर्थ-नूपुरवत् सुमधुर ध्वनि से युक्त तथा स्फटिक मणि के समान वायु के द्वारा ताड़ित जल जिनभक्ति में नृत्य करते हुए के समान सुशोभित होता है।

खाइया हु गंभीरा, णिय-णिय-तित्थयराणं णियमेणं।
चदुत्थ-भाग-पमाणं, गहिरा सुहावलोयणीया।।151।।

अर्थ-सुख से अवलोकनीय, गंभीर ये खातिका नियम से अपने अपने तीर्थंकरों के चतुर्थ भाग प्रमाण गहरी होती है।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकरों के समवशरण में खातिका क्षेत्र की गहराई का प्रमाण क्रमशः- 125 धनुष, $112\frac{1}{2}$ ध., 100 ध., $87\frac{1}{2}$ ध., 75धनुष, $62\frac{1}{2}$ ध., 50 ध., $37\frac{1}{2}$ ध., 25 ध., $22\frac{1}{2}$ ध., 20 ध., $17\frac{1}{2}$ ध., 15 ध., $12\frac{1}{2}$ ध., $11\frac{1}{4}$ ध., 10 ध., $8\frac{3}{4}$ ध., $7\frac{1}{2}$ ध., $6\frac{1}{4}$ ध., 5 ध., $3\frac{3}{4}$ ध., $2\frac{1}{2}$ ध., $2\frac{1}{4}$ हाथ, $1\frac{3}{4}$ हाथ था।

सग-सग-पढम-पुढवीण, वित्थार-सरिसो समवसरणेसुं।
सग-सग-विदिय-पुढवीण, वित्थारो चिय मुणेदव्वा।।152।।

अर्थ-समवशरणों में अपनी-अपनी द्वितीय पृथ्वियों का विस्तार, अपनी अपनी प्रथम पृथ्वियों के विस्तार के सदृश है।

चेइय-पासाद-महिं, णो संगच्छंते कइवय-सूरी।
तित्थयर-समवसरणे, ताण उवएसाणुसारेण।।153।।
उसहे खाइय-खिदीइ, वित्थारो एय-जोजण-पमाणं।
तहा कमेणं हीणं, सेसेसुं जिणवरिंदेसुं।।154।।

अर्थ-कतिपय आचार्य तीर्थंकरों के समवशरण में चैत्य प्रासाद भूमि को स्वीकार नहीं करते। उनके उपदेशानुसार श्री ऋषभनाथ जिन के समवशरण में खातिका भूमि का विस्तार सौ योजन प्रमाण था। तथा शेष जिनवरेन्द्रों के समवशरण में क्रमशः हीन था।

दूसरी वेदी एवं वल्ली क्षेत्र प्ररूपण

विदिय-वेदी सोहिदा, णिय-णिय-पढम-वेदीण सरिसा ता।
णवरि ताण वित्थारो, पढमादु दुगुणिद-परिमाणं।।155।।

अर्थ-वे द्वितीय वेदियाँ अपनी-अपनी प्रथम वेदियों के सदृश सुशोभित होती हैं। विशेषता यह है उनका विस्तार प्रथम वेदी से दुगुना होता है।

विशेषार्थ-श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में द्वितीय वेदी का विस्तार क्रमशः $\frac{24}{72}$ कोस, $\frac{23}{72}$ को., $\frac{22}{72}$ को., $\frac{21}{72}$ को., $\frac{20}{72}$ को., $\frac{19}{72}$ को., $\frac{18}{72}$ को., $\frac{17}{72}$ को., $\frac{16}{72}$ को., $\frac{15}{72}$ को., $\frac{14}{72}$ को., $\frac{13}{72}$ को., $\frac{12}{72}$ को., $\frac{11}{72}$ को., $\frac{10}{72}$ को., $\frac{9}{72}$ को., $\frac{8}{72}$ को., $\frac{7}{72}$ को., $\frac{6}{72}$ को., $\frac{5}{72}$ को., $\frac{4}{72}$ को., $\frac{3}{72}$ को., $\frac{5}{144}$ को., $\frac{1}{36}$ कोस था।

ताणं अग्गे वल्ली, भूमी विविह-केलि-पव्वय-जुत्ता।
जासु अणेगा जीवा, मोदणत्थं किलिकिंचंते।।156।।

अर्थ-उनके आगे विविध क्रीड़ा पर्वतों से युक्त लता भूमि होती है जहाँ पर अनेक जीव मोद के लिए क्रीड़ा करते हैं।

पुण्णाग-णाग-कुज्जय-सदवत्त-अइमुत्ताइ-लया-जुदा।
मणिमय-सोवाणेहिं, मणोहरा सुरमणिज्जा ता।।157।।

अर्थ-वे भूमियाँ पुन्नाग, नाग, कुब्जक, शतपत्र, अतिमुक्तादि लता से युक्त मनोहर व मणिमय-सोपानों के द्वारा रमणीय होती हैं।

सक्कं सह आलिंगदि, सची वा सोमणसवणं सुमेरुं।
जह तह वल्लि-महीए, सोहंति हरिद-वल्लरीओ।।158।।

अर्थ–लता भूमि में हरी–हरी लताएँ उस प्रकार सुशोभित होती हैं जिस प्रकार शचि इंद्र के साथ अथवा सोमनस वन मेरु का आलिंगन करता है।

किड्डुणे होलियाए, भद्दसाले इंदेहि पीद–खं व।
सुरसुमणाण गंधेण, उड्डुंत–केसरेण महि–खं।।159।।

अर्थ–भद्रसाल वन में इंद्रों के द्वारा होली खेले जाने पर पीत आकाश के समान लता भूमि का आकाश सुर सुमनों की गंध व उड़ते हुए पराग से पीत शोभायमान हो रहा था।

चंदकंतमणि–णिम्मिद–सुंदर–सीयला सिला हिमाणीव।
देवाण वीसामस्स, मज्झम्मि वल्लरि–गिहाणं च।।160।।

अर्थ–लता गृहों के मध्य देवों के विश्राम के लिए चंद्रकांत मणि से निर्मित सुंदर व बर्फ के समान शीतल शिला अत्यंत सुशोभित होती है।

मंदसीयलं पवणं, सेज्जाहि सोहिदं वल्लरि–गिहं च।
मणहरकिड्डासेलो, संतुट्ठि–कारगा सव्वाण।।161।।

अर्थ–लतावन में बने शय्याओं से सुशोभित लतागृह, मनोहर क्रीड़ा पर्वत और मंद शीतल पवन सभी के लिए संतोषजनक होती है।

ताणं मज्झे विविहा, वावी विहसंत–पउम–संजुत्ता।
सव्व–आगंतुगाणं, चित्तागरिसगाण खिदीणं।।162।।

सुंदेर–संजुत्ताण, वित्थारो रम्म–लया–भूमीणं।
वित्थारादो दुगुणिद–परिमाणं खाइय–भूमीण।।163।।

अर्थ–सभी आगंतुकों के चित्त को आकर्षित करने वाली उन भूमियों के मध्य खिले हुए कमलों से युक्त वापिकाएँ होती हैं। सौंदर्य से युक्त रम्य लता भूमियों का विस्तार अपनी–अपनी खातिका भूमियों के विस्तार से दुगुना प्रमाण होता है।

द्वितीय कोट

पुण विदिया साला खलु, जाण विहवा धूलीसाल-सरिसा।
णवरि साल-वित्थारो, दुगुणिद-परिमाणं जाणेह।।164।।

अर्थ-पुनः इसके आगे द्वितीय कोट होते हैं, जिनका वैभव धूलिसाल कोट के सदृश जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इन कोटों का विस्तार उनसे (अपने-अपने धूलिसाल से) दुगुना होता है।

सहस्स-इंदधणुव्व हु, विदियो सालो सोहेदि गगणम्मि।
रयणखचिद-सालाभा, विम्हय-कारगा सव्वाणं।।165।।

अर्थ-समवशरण में द्वितीय कोट आकाश में हजारों इंद्रधनुष के समान शोभायमान होता है। रत्नखचित कोट की आभा सभी के लिए आश्चर्य उत्पन्न करने वाली होती है।

रयणमयस्स-करि-मीण-मणुसादीण सज्जिदा मिहुणेहिं।
उवरिमभागो जडिदो, तारगजूहव्व मोत्तिआहि।।166।।

अर्थ-यह कोट रत्नमय अश्व, हाथी, मछली, मनुष्यादि के जोड़ों द्वारा सुसज्जित होता है। तथा उपरिम भाग ताराओं के समूह के समान मोतियों से जड़ित होता है।

णहस्स सव्वतारगा, उवट्ठिदा इव जिणदंसणछलेण।
सालस्स सिहरम्मि खलु, सोहदि णाणा रयणरासी।।167।।

अर्थ-कोट के शिखर पर नाना रत्नों की राशि इस प्रकार शोभायमान होती है जैसे नभ के सभी तारे जिन दर्शन के बहाने यहाँ उपस्थित हुए हों।

उच्च-तेखंडजुदाणि, जोइसिणव्व चदुदारणिम्मलाणि।
कुलायलाण सिहरोव्व, चित्तहारगाणि य सालस्स।।168।।

अर्थ-इस कोट के ज्योत्सना के समान निर्मल, कुलाचल के शिखरों के समान ऊँचे, तीन खंडों से युक्त चित्त का हरण करने वाले चार द्वार हैं।

उवरिमभागो हु पउमरायमणिजडिद-रत्ताभाजुत्तो।
आयासो सोहदि णव-णव-विहसंत-पुप्फाणीव य।।169।।

अर्थ-द्वार का उपरिम भाग पद्मराग मणि से जड़ित व लाल आभा से युक्त है। उसका आकाश नव-नव खिलते हुए पुष्पों के सामान शोभायमान होता है। अर्थात् लाल आभा से युक्त वह लालिमा युक्त आकाश ऐसा लगता है मानो वहाँ नवीन-नवीन पुष्प खिले हों।

विदिय-साल-दाराइं, रजदमयाइं चित्तहारगाइं।
सया जक्ख-देवेहिं, सुरक्खिदा दार-जुद-साला।।170।।

अर्थ-चित्त हारक द्वितीय कोट के द्वार रजतमय होते हैं तथा द्वारों से युक्त ये कोट सदा यक्ष देवों के द्वारा रचित होते हैं।

उपवन भूमि

अग्गे चदुत्थ-उववण-भूमी असोग-सत्तपण्ण-वणेहि।
चंपय-अंब-वणेहिं, कमसो पुव्वादिसु सुरम्मा।।171।।

अर्थ-इसके आगे पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः अशोक, सप्तपर्ण, चंपक व आम्र वनों से सुरम्य उपवन भूमि होती है।

उववणम्मि सुसोहिदा, रुक्खा फल-फुल्ल-वल्लि-आदीहिं।
विसिट्ठ-अग्घजुत्तव्व, तित्थयरस्स भत्तिरायेण।।172।।

अर्थ-तीर्थंकर प्रभु की भक्ति के अनुराग से उनके लिए विशिष्ट अर्घ युक्त के समान उपवन भूमि में वृक्ष, फल, फूल, लता आदि सुशोभित हैं।

पुप्फसुगंधजुत्ताणि, रवसहिदवणाणि कोइलादीणं।
पणोल्लंते तत्थेव, देवमाणुसा विसम्मेदुं।।173।।

अर्थ-पुष्पों की सुगंध से युक्त व कोयल आदि की आवाज से सहित वन देव व मनुष्यों को वहीं विश्राम के लिए प्रेरित करते हैं।

विविणे कत्थ वि किट्टिम-पव्वया-किड्डामंडवा दुग्गा।
उप्पल-सरोवराणि य, आगरिसंति सव्वचित्ताणि।।174।।

अर्थ-वन में कहीं कृत्रिम पर्वत, क्रीड़ा पर्वत, महल व कमल सरोवर सभी के चित्त को आकर्षित करते हैं।

कत्थ वि चित्तहारगं, सरोवरं कत्थ वि चित्तसालाउ।
इग-बे-ते-पहुदि-खंड-जुत्त-पसाया पेक्खागिहा।।175।।

अर्थ-कहीं पर चित्त हारक सरोवर, कहीं चित्रशालाएँ, कहीं एक-दो-तीन आदि खंड वाले प्रासाद और प्रेक्षागृह होते हैं।

समाकिण्ण-रुक्खाणं, वणम्मि तलभूमी पुप्फरेणूहि।
अच्चंता रमणीया, हेरण्णरजुच्छाइआ इव।।176।।

अर्थ-वन में पुष्प के पराग से आकीर्ण वृक्षों की अति रमणीय तल भूमी ऐसी जान पड़ती है मानो वह स्वर्ण रज से ही आच्छादित है।

बहुविह-तरंगिणीण, सा पुलिण-कीडण-पव्वयेहिं तह।
वर-वावीहिं काणणा-संडेहि सुसोहिदा भूमी।।177।।

अर्थ-वह भूमि बहु प्रकार की नदियों के पुलिन, क्रीड़ा पर्वतों, उत्कृष्ट वापिकाओं तथा वन खंडों से सुशोभित होती है।

असोग-सत्तच्छदा य, चंपय-अंबा चउ-चउ-रुक्खाइं।
होंति एगेग-उववण-भूमीए अइ-मणोहराणि।।178।।

अर्थ-एक-एक उपवन भूमि में अशोक, सप्तच्छद, चंपक व आम्र ये चार-चार अतिमनोहर वृक्ष होते हैं।

चेइय-रुक्ख-णामेण, सुप्पसिद्धाणि एआणि रुक्खाणि।
विगासगाणि भव्वाण, हिदय-सरोरुहाणं णिच्चं।।179।।

अर्थ-नित्य ही भव्यों के हृदय रूपी कमलों के विकासक ये वृक्ष चैत्य वृक्ष के नाम से सुप्रसिद्ध होते हैं।

चउ-अरण्णे हेमस्स, तियकडणीसुं उच्चपीठिगाए।
ठिदा अच्चंतविसाल-चेइयरुक्खा सुरमणीया।।180।।

अर्थ-चारों वनों में स्वर्ण की तीन कटनियों पर, ऊँची पीठिका पर अत्यंत विशाल, रमणीय चैत्य वृक्ष स्थित है।

समाकिण्णो वेरुलिअ-पत्तेहिं पउमरागपुप्फेहिं।
हेमुच्चसाहा-जुदो, चेइय-रुक्खो वंदणीयो।।181।।

अर्थ-वैडूर्यमणि के पत्तों व पद्मरागमणि के पुष्पों से समाकीर्ण स्वर्ण की ऊँची शाखा से युक्त यह चैत्य वृक्ष सदा वंदनीय है।

सगब्भुदाहाइ सव्व-दिसिमंडलं हु पयासदे रुक्खो।
संपुण्णरण्णे वि बहु-तरुमज्झे अणुवमो रम्मो।।182।।

अर्थ-संपूर्ण वन में बहुत वृक्षों के बीच भी यह अनुपम रम्य चैत्य वृक्ष अपनी अद्भुत आभा से संपूर्ण दिशिमंडल को प्रकाशित करता है।

होंति पत्तेय-चेइय-रुक्खे चउ-चउ-जिणवर-बिंबाइं।
मणोहर-मणिमयाइं, वसु-महापाडिहेर-जुदाणि।।183।।

अर्थ-प्रत्येक चैत्य वृक्ष पर मनोहर, मणिमय, अष्ट महाप्रातिहार्यों से युक्त चार-चार जिनबिंब होते हैं।

मूलभागे विज्जंत-जिणपडिमाण अच्चंते अइचंति।
अट्ठदव्वेहिं खीर-सायरणीरेहि णरदेवा।।184।।

अर्थ-मनुष्य व देव मूल भाग में विद्यमान जिनप्रतिमाओं की अष्टद्रव्यों से पूजन व क्षीर सागर के जल से अभिषेक करते हैं।

भवी अत्थ आगच्छिय, अच्चंति वीदराय-जिणबिंबाणि।
जिणबिंब-णिमित्तेणं, होंति पुज्जणीय-रुक्खाइं।।185।।

अर्थ-जिनबिंबों के निमित्त से ये वृक्ष पूजनीय होते हैं। भव्य जीव यहाँ आकर वीतराग जिनबिंबों की अर्चना करते हैं।

जदा चेइयरुक्खाण, अउलं विहवं तदा अवण्णीयं।
केवलणाण-विहवस्स, का कहा तित्थयरदेवस्स।।186।।

अर्थ–जब चैत्यवृक्षों का अतुल वैभव अवर्णनीय है तब तीर्थंकर देव के केवलज्ञान रूपी वैभव की क्या कथा? अर्थात् उसे कौन कहने में समर्थ है।

भव्वेहिं वंदणीय-चेइय-रुक्खाणं खलु उच्छेहा।
णिय-णिय तित्थयराणं, देहुदयादु बारस-गुणिदा।।187।।

अर्थ–भव्यों के द्वारा वंदनीय इन चैत्य वृक्षों का उत्सेध अपने अपने तीर्थंकरों की देह की ऊँचाई से बारह गुना होता है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में उपवन भूमि स्थित चैत्यवृक्षों की ऊँचाई क्रमशः 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष थी।

उववण-वावि-सलिलम्मि, सिणाणे पेक्खंति सग-एग-भवं।
जण-णिविहा णिरिक्खणे, अदीदाणागद-सत्त-भवा।।188।।

अर्थ–जन समूह उपवन की वापिकाओं के जल में स्नान करने पर अपने एक भव को देखते हैं तथा उस जल में निरीक्षण करने पर अतीत, अनागत संबंधी सात भव देखते हैं।

तिण्णि-साल-परिकिण्णा, पीढत्तय-उवरि-थंभा सोहंति।
पुव्वाइ-चउ-दिसासुं, एगेगे चेइय-रुक्खम्मि।।189।।

अर्थ–एक-एक चैत्य वृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित एवं तीन पीठों के ऊपर पूर्वादि चारों दिशाओं में मानस्तंभ सुशोभित होते हैं।

सुर-णर-देह-णिस्सरिद -कुंकमेण पीद-सलिल-वावीहिं।
पउम-कुमुद-पुप्फ-गंध-जुत्ता होंति माणत्थंभा।।190।।

अर्थ–वे मानस्तंभ देव–मनुष्यों के देह से निकली हुई केशर से पीत जल वाली वापिकाओं और कमल कुमुद पुष्पों की गंध से युक्त होते हैं।

णंदा णंदोत्तरा य, आणंदाहिणंदिणी णंदवती।
णंदिघोसा असोगे, अरण्णम्मि ठिदा छहवावी।।191।।

अर्थ–अशोक वन में नंदा, नंदोत्तरा, आनंदा, अभिनंदिनी, नन्दवती और नंदिघोषा ये ६ वापिकाएँ अशोक वन में स्थित हैं।

विजयाहिजया जेत्ती, वइजयंती अवराजिदा वावी।
जयोत्तरा सत्तपण्ण–अरण्णम्मि तह मुणेदव्वा।।192।।

अर्थ–सप्तपर्ण वन में विजया, अभिजया, जैत्री, वैजयंती, अपराजिता और जयोत्तरा ये छह वापियाँ जाननी चाहियें।

कुमुदा णलिणी पउमा, पुक्करा तह विस्सुप्पला कमला।
चंपग–अरण्णासिदा, भासिज्जंति खलु छह–वावी।।193।।

अर्थ–कुमुदा, नलिनी, पद्मा, पुष्करा, विश्वोत्पला और कमला ये छह वापियाँ चंपक वन के आश्रित कही गई हैं।

पभासा भासदी तह, भासा सुप्पहा भाणुमालिणी य।
सयंपहा छह–वावी, गणिज्जंति अंब–अरण्णम्मि।।194।।

अर्थ–प्रभासा, भास्वती, भासा, सुप्रभा, भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छह वापियाँ आम्र वन में कही जाती हैं।

उदयं विजयं पीदिं, खादिं फलं देंति वावी ताणं।
पुव्वादीण कमेणं, जे फलकंखी पुज्जंति ता।।195।।

अर्थ–पूर्वादि दिशाओं की वापिकाएँ क्रम से उदय, विजय, प्रीति और ख्याति नामक फल उनके लिए देती हैं जो फल के आकांक्षी उनकी पूजा करते हैं।

पाविय पुप्फ–समूहं, भत्तजणा थूवंतं जिणपडिमा।
पुज्जमाणा कमेण, पविसंति अग्गे भत्तीए।।196।।

अर्थ–भक्तजन उन वापिकाओं से फूलों का समूह प्राप्त कर स्तूपों तक भक्ति से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हुए आगे प्रवेश करते हैं।

विविह-रयण-णिम्मिदाणि, अणेग-मंगल-दव्व-जुद-भवणाणि।
सहंति पंति-कमेणं, लीलायंति सुर-णरा जेसु।।197।।

अर्थ–वहाँ पर विविध-रत्नों से निर्मित, अनेक मंगल द्रव्यों से भूषित भवन पंक्ति क्रम से शोभायमान होते हैं जिनमें देव व मनुष्य क्रीड़ा करते हैं।

ताण भवणाण उदयो, णिय-तित्थयरादो बारस-गुणिदो।
रयण-खचिदाण अभूद-पुव्वाणंद-कारगाणं च।।198।।

अर्थ–रत्नों से खचित व अभूतपूर्व आनंद के कारक उन भवनों की ऊँचाई अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारह गुणित होती है।

णिय-णिय-पढम-पुढवीण, समवसरणेसुं संपसारादो।
सग-सग-वण-पुढवीणं, वित्थारो दुगुणिदो णेयो।।199।।

अर्थ–समवशरणों में अपनी-अपनी उपवन पृथ्वियों का विस्तार अपनी अपनी प्रथम पृथ्वियों के विस्तार से दुगुना जानना चाहिए।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में उपवन भूमि का विस्तार क्रमशः $\frac{264}{288}$ योजन, $\frac{253}{288}$ यो., $\frac{242}{288}$ यो., $\frac{231}{288}$ यो., $\frac{220}{288}$ यो., $\frac{209}{288}$ यो., $\frac{198}{288}$ यो., $\frac{187}{288}$ यो., $\frac{176}{288}$ यो., $\frac{165}{288}$ यो., $\frac{154}{288}$ यो., $\frac{143}{288}$ यो., $\frac{132}{288}$ यो., $\frac{121}{288}$ यो., $\frac{110}{288}$ यो., $\frac{99}{288}$ यो., $\frac{88}{288}$ यो., $\frac{77}{288}$ यो., $\frac{66}{288}$ यो., $\frac{55}{288}$ यो., $\frac{44}{288}$ यो., $\frac{33}{288}$ यो., $\frac{55}{576}$ कोस, $\frac{44}{576}$ कोस था।

सव्व-वणाण आसिदा, सव्ववीहीण बे-पस्सभागेसु।
बे-बे-णट्टयसाला, सोहंति मणोरंजणत्थं।।200।।

अर्थ-सभी वनों के आश्रित सभी वीथियों के दोनों पार्श्व भागों में मनोरंजन के लिए दो-दो नाट्यशाला सुशोभित होती हैं।

आदिम-अट्ठ-सालासु, पणच्चंति भावण-सुर-कण्णाओ।
अंतिम-अट्ठ-सालासु, कप्पवासि-कण्णाओ तहा।।201।।

अर्थ-इनमें आदि की आठ नाट्यशालाओं में भवनवासिनी देव कन्याएँ तथा अंतिम आठ नाट्यशालाओं में कल्पवासिनी कन्याएँ नृत्य करती हैं।

इंदपरिसदे कुणंति, णच्चं णाडयं जह देवकण्णा।
तह णाडयसालाए, मणरंजग-विलासं णिच्चं।।202।।

अर्थ-जिस प्रकार इंद्रपरिषद में देवकन्याएँ नृत्य नाटक करती हैं उसी प्रकार नाट्यशाला में नित्य अप्सराएँ मनोरंजक विलास करती हैं।

सुणट्टयसालाणं हि, सुव्व-सरिसं खलु वण्णणं सेसं।
जिणवर-विजय-गीद-जुद-णट्टयसालाओ मोहंति।।203।।

अर्थ-जिनेंद्र के विजय गीतों से युक्त ये नाट्यशालाएँ सभी को मोहित करती हैं। इन नृत्यशालाओं का शेष वर्णन पूर्व सदृश ही जानना चाहिए।

तृतीय वेदी व ध्वज भूमि

पुणो तिदिय-वेदीओ, सग-सग-विदिय-वेदि-सरिसाओ तह।
जक्खिंदा खलु हवेंति, अत्थ दुआर-रक्खगा किण्णु।।204।।

अर्थ-पुनः तृतीय वेदियाँ अपनी अपनी द्वितीय वेदियों के सदृश होती हैं। किन्तु विशेषता यह है यहाँ द्वार रक्षक यक्षेन्द्र होते हैं।

ताणग्गे धय-भूमी, जासु दहविह-चिण्णेहि चिंधाला।
धया हवंति सोक्खदा, मंगल्ला पुण्ण-वड्ढगा य।।205।।

अर्थ-उनके आगे ध्वज भूमी होती है। जिनमें दस प्रकार के चिह्नों से चिह्नित, सौख्य प्रदान करने वाली, मंगलकारी व पुण्यवर्द्धक ध्वजाएँ होती हैं।

सीह-गय-उसहेहिं च, गरुल-मयूर-चंद-आइच्चेहिं।
हंस-पउम-चक्केहिं, चिण्ह-जुदा दिव्व-धया होंति।।206।।

अर्थ-सिंह, हाथी, वृषभ, गरुड़, मयूर, चंद्र, सूर्य, हंस, कमल व चक्र इन चिह्नों से युक्त ये दिव्य ध्वजाएँ होती हैं।

पत्तेय-दिसाइ होंति, महाधया दहविहा सुप्पहाणा।
ता अवि पत्तेयं खलु, अट्ठोत्तर-सया णियमेणं।।207।।

अर्थ-प्रत्येक दिशा में दस प्रकार की, सुप्रधान महाध्वजा होती हैं और वह भी प्रत्येक 108 ध्वजाओं से नियम से संयुक्त होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में 10-10 महाध्वजा तब 10x4=40, प्रत्येक 108 होती हैं तब 40x108=4320 कुल महाध्वजा होती हैं।

पत्तेयं महाधया, सग वसुत्तर-सय-खुल्लय-धय-जुदा।
अह-विच्छेदगा होंति, खेमंकरा जस-वड्ढगा य।।208।।

अर्थ-प्रत्येक महाध्वजा अघ विच्छेदक, क्षेमंकर, यशवर्द्धक व अपनी 108 क्षुद्र ध्वजाओं से युक्त होती है। अत: 4320x108=466560 लघु ध्वजाएँ होती हैं।

चदुलक्खाइं सत्तति-सहस्स-असीदि-अहिय-असीदि-सया।
महा-खुल्लय-धया तह, होंति एगेग-समवसरणे।।209।।

अर्थ-एक-एक समवशरण में (ध्वज भूमि में) चार लाख सत्तर हजार आठ सौ अस्सी (470880) महाध्वजा व क्षुद्र ध्वजाऐं होती हैं।

सोलसलक्ख-चउसट्ठि-सहस्स-समहिद-एयकोडी सुहा।
एयदिसाए हु धया, के वि आइरिया भासंते।।210।।

अर्थ-कुछ आचार्य एक दिशा में एक करोड़ सोलह लाख चौंसठ हजार शुभ ध्वजा कहते हैं।

साहिय-चउकोडि-अट्ठसट्ठि-लक्ख-छत्तीस-सहस्साणि हु।
धया सय चउदिसासुं, हवंति सुह-धया भूमीए।।211।।

अर्थ–अत: उनके अनुसार शुभ ध्वज भूमि में चार दिशाओं में सदा चार करोड़ अड़सठ लाख छत्तीस हजार कुछ अधिक ध्वजा होती हैं।

जम्मं मरणं धंसदि, जादि-आइ-कम्म-णिवारण-हेदू।
तम्हा हु धया सण्णा, जोग्गा भव्वा तं ठावेज्ज।।212।।

अर्थ–वह जन्म-मरण को ध्वस्त करती है, जाति आदि कर्मों के निवारण का हेतु है इसीलिए उसकी ध्वजा संज्ञा योग्य है। भव्यों को इसकी स्थापना करनी चाहिए।

धया हु विजयपदीगा, जिणिंदेणं मोहणिज्ज-जयेणं।
सोहंते पत्त-धया, दंसंत-तिलोय-सामित्तं।।213।।

अर्थ–ध्वजा निश्चय से विजय का प्रतीक होती है। जिनेंद्र प्रभु के द्वारा मोहनीय कर्म की जय से प्राप्त ध्वजा तीनों लोकों के स्वामित्व को दिखाती हुईं सुशोभित होती हैं।

जो को वि भव्वजीवो, जिणगेहम्मि ठावेदि सुह-केदुं।
उड्ढगदिं पावदि सो, सुर-इंदाण पुण सिद्धपयं।।214।।

अर्थ–जो कोई भी भव्य जीव जिनगृह में शुभ ध्वज की स्थापना करता है वह ऊर्ध्व गति प्राप्त करता है। सुर-इंद्रों के पद पुन: सिद्ध पद पाता है।

रयण-खचिद-सव्वधया, संलग्गा सुवण्णमय-थंभेसुं।
थंभाणं उच्छेहो, णिय-जिणादो बारस-गुणिदो।।215।।

अर्थ–रत्न खचित सभी ध्वजा स्वर्णमय स्तंभों में संलग्न होती हैं। इन स्तंभों की ऊँचाई अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारह गुनी होती है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में ध्वज स्तम्भ की ऊँचाई क्रमश:– 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष प्रमाण थी।

तिय-हिद-चउसट्ठि-अहिय-दुसय-पव्वा थंभ-रुंदा उसहे।
कसमो पुण एयारस-हीणा णेमिजिण-पेरंतं।।216।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ जिन के समवशरण में इन स्तंभो का विस्तार तीन से विभाजित दो सौ चौंसठ अंगुल था। पुनः इसके आगे श्री नेमिनाथ पर्यंत क्रमशः भाज्य राशि में 11-11 कम होते गए।

पासस्स समवसरणे, छ-विभत्ताणि पणवण्ण-अंगुलाणि।
छभाजिदाणि चउदाल-अंगुलाणि वीरस्स सहाइ।।217।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में इन स्तंभों का विस्तार छः से विभक्त पचपन अंगुल एवं श्री वीर स्वामी की सभा में छः से भाजित चवालीस अंगुल था।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में ध्वज स्तम्भों का विस्तार क्रमशः $\frac{264}{3}$ अंगुल, $\frac{253}{3}$ अं., $\frac{242}{3}$ अं., $\frac{231}{3}$ अं., $\frac{220}{3}$ अं., $\frac{209}{3}$ अं., $\frac{198}{3}$ अं., $\frac{187}{3}$ अं., $\frac{176}{3}$ अं., $\frac{165}{3}$ अं., $\frac{154}{3}$ अं., $\frac{143}{3}$ अं., $\frac{132}{3}$ अं., $\frac{121}{3}$ अं., $\frac{110}{3}$ अं., $\frac{99}{3}$ अं., $\frac{88}{3}$ अं., $\frac{77}{3}$ अं., $\frac{66}{3}$ अं., $\frac{55}{3}$ अं., $\frac{44}{3}$ अं., $\frac{33}{3}$ अं., $\frac{55}{6}$ अं., $\frac{44}{6}$ अंगुल प्रमाण था।

धयदंडाण अंतरं, चउवीस-भाजिदा छस्सय-दंडा।
आदिम-उसहणाहस्स, मुणेदव्वं समवसरणम्मि।।218।।

अर्थ-प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभनाथ के समवशरण में ध्वज दंडों का अंतर चौबीस से भाजित छह सौ धनुष जानना चाहिए।

पुणो सिरि-अरिट्ठ-णेमि-जिणंतं कमसो पणवीस-णूणा।
पासे अट्ठदाल-हिद-पणवीस-समहिद-सय-दंडा।।219।।

अर्थ-पुनः श्री अरिष्ट नेमि जिन पर्यंत क्रमशः भाज्य राशि में से पच्चीस-पच्चीस कम होते गए। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में अड़तालीस से भाजित एक सौ पच्चीस धनुष था।

वड्ढमाण-वीरस्स हु, समवसरणे अट्ठदाल-विभत्ता।
इग-सय-दंडा णेया, अंतरं च केदुदंडाणं।।220।।

अर्थ-तथा श्री वीर वर्द्धमान के समवशरण में ध्वज दंडों का अंतर अड़तालीस से विभाजित एक सौ धनुष जानना चाहिए।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत सभी तीर्थंकरों के समवशरण में ध्वज दंडों का अंतर क्रमशः $\frac{600}{24}$ धनुष, $\frac{575}{24}$ ध., $\frac{550}{24}$ ध., $\frac{525}{24}$ ध., $\frac{500}{24}$ ध., $\frac{475}{24}$ ध., $\frac{450}{24}$ ध., $\frac{425}{24}$ ध., $\frac{400}{24}$ ध., $\frac{375}{24}$ ध., $\frac{350}{24}$ ध., $\frac{325}{24}$ ध., $\frac{300}{24}$ ध., $\frac{275}{24}$ ध., $\frac{250}{24}$ ध., $\frac{225}{24}$ ध., $\frac{200}{24}$ ध., $\frac{175}{24}$ ध., $\frac{150}{24}$ ध., $\frac{125}{24}$ ध., $\frac{100}{24}$ ध., $\frac{75}{24}$ ध., $\frac{125}{48}$ ध., $\frac{100}{48}$ धनुष प्रमाण था।

णिय-णिय-वल्लि-पुढवीण, हवेदि सया जेत्तियो वित्थारो।
णिय-णिय-धय-पुढवीणं, णेयो तेत्तियो वित्थारो।।221।।

अर्थ-अपनी-अपनी लता भूमियों का जितना विस्तार होता है उतना ही विस्तार अपनी-अपनी ध्वज भूमियों का भी जानना चाहिए।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत सभी तीर्थंकरों के समवशरण में ध्वजभूमियों का विस्तार

क्रमशः– $\frac{264}{288}$ योजन, $\frac{253}{288}$ यो., $\frac{242}{288}$ यो., $\frac{231}{288}$ यो., $\frac{220}{288}$ यो., $\frac{209}{288}$ यो., $\frac{198}{288}$ यो., $\frac{187}{288}$ यो., $\frac{176}{288}$ यो., $\frac{165}{288}$ यो., $\frac{154}{288}$ यो., $\frac{143}{288}$ यो., $\frac{132}{288}$ यो., $\frac{121}{288}$ यो., $\frac{110}{288}$ यो., $\frac{99}{288}$ यो., $\frac{88}{288}$ यो., $\frac{77}{288}$ यो., $\frac{66}{288}$ यो., $\frac{55}{288}$ यो., $\frac{44}{288}$ यो., $\frac{33}{288}$ यो., $\frac{55}{576}$ कोस, $\frac{44}{576}$ कोस प्रमाण जानना चाहिए।

कोस में– $3\frac{2}{3}$ कोस, $3\frac{37}{72}$, $3\frac{13}{26}$, $3\frac{5}{24}$, $3\frac{1}{18}$, $2\frac{65}{72}$, $2\frac{3}{4}$, $2\frac{43}{72}$, $2\frac{4}{9}$, $2\frac{7}{24}$, $2\frac{5}{36}$, $1\frac{71}{72}$, $1\frac{5}{6}$, $1\frac{49}{72}$, $1\frac{19}{36}$, $1\frac{3}{8}$, $1\frac{2}{9}$, $1\frac{5}{72}$, $\frac{11}{12}$, $\frac{55}{72}$, $\frac{11}{18}$, $\frac{11}{24}$, $\frac{55}{144}$, $\frac{11}{36}$ कोस प्रमाण ध्वजभूमियों का विस्तार था।

तीसरा कोट

णिय-धूलिसाल-सरिसा, अग्गे रजदमया तिदिया साला।
वित्थारे बेगुणिदा-दार-रक्खगा भवणवासी।।222।।

अर्थ–इसके आगे अपने धूलिसाल कोट के सदृश ही रजतमय तीसरा कोट होता है। यहाँ विशेषता यह है कि यह उससे विस्तार में दुगुना होता है और यहाँ द्वार रक्षक भवनवासी देव होते हैं।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में तीसरे कोट का विस्तार क्रमशः $\frac{24}{72}$

कोस, $\frac{23}{72}$ को., $\frac{22}{72}$ को., $\frac{21}{72}$ को., $\frac{20}{72}$ को., $\frac{19}{72}$ को., $\frac{18}{72}$ को., $\frac{17}{72}$ को., $\frac{16}{72}$ को., $\frac{15}{72}$ को., $\frac{14}{72}$ को., $\frac{13}{72}$ को., $\frac{12}{72}$ को., $\frac{11}{72}$ को., $\frac{10}{72}$ को., $\frac{9}{72}$ को., $\frac{8}{72}$ को., $\frac{7}{72}$ को., $\frac{6}{72}$ को., $\frac{5}{72}$ को., $\frac{4}{72}$ को., $\frac{3}{72}$ को., $\frac{5}{144}$ को., $\frac{1}{36}$ कोस प्रमाण था।

धनुष में–$666\frac{2}{3}$ धनुष, $638\frac{8}{9}$, $611\frac{1}{9}$, $583\frac{1}{3}$, $555\frac{5}{9}$, $527\frac{7}{9}$, 500, $472\frac{2}{9}$, $444\frac{4}{9}$, $416\frac{2}{3}$, $388\frac{8}{9}$, $361\frac{1}{9}$, $333\frac{1}{3}$, $305\frac{5}{9}$, $277\frac{7}{9}$, 250, $222\frac{2}{9}$, $194\frac{4}{9}$, $166\frac{2}{3}$, $138\frac{8}{9}$, $111\frac{1}{9}$, $83\frac{1}{3}$, $69\frac{1}{36}$, $55\frac{5}{9}$ धनुष प्रमाण था।

सत्तखंड-संजुदाणि, आयासफडिगमणिविणिम्मिदाणि य।
महासुरयण-खचिदाणि, चदुगोउरदाराणि तिदिये।।223।।

अर्थ–तीसरे कोट में सात खंडों से युक्त, आकाश स्फटिक मणि से निर्मित व महा सुरत्नों से खचित चार गोपुर द्वार हैं।

विजयो विस्सुद-कित्ती, विस्सधुगो विमलो हु तहा उदयो।
वासवीरियं वरं च, पुव्वदारस्स सुह-णामाणि।।224।।

अर्थ–इस कोट के पूर्व द्वार के विजय, विश्रुत, कीर्ति, विश्वधुक्, विमल, उदय, वासवीर्य और वर ये आठ शुभ नाम हैं।

जेट्ठं वइजयंतं च, वरिट्ठाणघधारणं सुणामाणि।
यब्भं सिवमप्पदिघं, दक्खिणदारस्स हु सालस्स।।225।।

अर्थ–इस कोट के दक्षिण द्वार के ज्येष्ठ, वैजयन्त, वरिष्ठ, अनघ, धारण,

याभ्य, शिव व अप्रतिघ ये आठ शुभ नाम हैं।

जयंतममियसारं च, सुहाम-मक्खोब्भ-सुप्पहं वरुणं।
वरदं तह पच्छिमस्स, वसुणामाणि सुप्पसिद्धाणि।।226।।

अर्थ-इस कोट के पश्चिम द्वार के जयंत, अमित, सार, सुधाम, अक्षोभ्य, सुप्रभ, वरुण और वरद ये आठ नाम सुप्रसिद्ध हैं।

अवराजिद-मतुलत्थं, उदगममोहगं उदयं णामाणि।
पुण्णकामग-मक्खयं, उत्तरदारस्स य णेयाणि।।227।।

अर्थ-उत्तर द्वार के अपराजित, अतुल, अर्थ, उदक, अमोघक, उदय पूर्णकामक और अक्षय ये आठ नाम जानने चाहिए।

कल्पवृक्ष भूमि

तादो छट्ठम-भूमी, णाम-कप्परुक्खं सुजोग्गं ताइ।
जम्हा सोहदि दहविह-कप्परुक्खा णंद-कारगा।।228।।

अर्थ-उसके आगे षष्टम कल्पभूमि है। क्योंकि वह भूमि आनंदकारक दस प्रकार के कल्पवृक्षों से शोभती है अतः उसका कल्पवृक्ष भूमि यह नाम सुयोग्य है।

पाणंग-तूरियंगा, भूसणंग-वत्थंग-भोयणंगा।
गिह-दीवंगा रुक्खा, भायण-माला-तेजंगा य।।229।।

अर्थ-पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, गृहांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग व तेजांग ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं।

पाणगा वज्ज-भूसण-अंबर-भोयण-भवण-पदीवा तह।
भायण-माला-जोदिणि-अत्था देंति जायणयाए।।230।।

अर्थ-ये कल्पवृक्ष याचना मात्र से पानक, वाद्य, आभूषण, वस्त्र, भोजन, भवन, दीप, बर्तन, माला एवं तेजयुक्त पदार्थ देते हैं।

सोहंति ताइ खिदीइ, विविह-कीडण-साला सुरमणिज्जा।
तत्थ माणुसा देवा, किड्डंता य अवअच्छंते।।231।।

अर्थ-उस पृथ्वी में सुरमणीय विविध क्रीड़न शालाएँ सुशोभित होती हैं जहाँ मनुष्य व देव क्रीड़ा करते हुए प्रसन्न होते हैं।

हवंति पेक्खण-साला, जिणिंद-विजय-चरित्त-गीद-जुत्ता।
विविहा जीवा तत्थ वि, चिट्ठिय सुणंति सुहद-गीदं।।232।।

अर्थ-उस भूमि में जिनेंद्र प्रभु के विजय चरित्र के गीतों से युक्त प्रेक्षणशालाएँ होती हैं जहाँ विविध जीव बैठकर सुखद गीत सुनते हैं।

कत्थ वि सुरम्म-वावी, विविह-पउम-कुमुद-पुप्फ-संजुत्ता।
णर-सुर-देह-णिस्सरिद-कुंकुमेण पीद-जल-जुत्ता।।233।।

अर्थ-उस भूमि में कहीं विविध कमल, कुमुद पुष्पों से संयुक्त और देव व मनुष्यों की देह से निकलने वाली केशर से पीत जल से युक्त सुरम्य वापिकाएँ होती हैं।

विविह-रयण-विणिम्मिदा, हम्म-कीडण-पेक्खा गेहादी य।
सोहंति पंति-कमेण, समवसरण-कप्पभूमीसु।।234।।

अर्थ-समवशरण की कल्पभूमियों में विविध रत्नों से निर्मित भवन, क्रीड़ागृह और प्रेक्षागृहादि पंक्ति क्रम से सुशोभित होते हैं।

तत्थ पुव्वादि-दिसासु, णमेरू मंदार-संताण-तरू।
पारियोय चउ-चउ-भव-सिद्धत्थ-रुक्खाइं हवंति।।235।।

अर्थ-वहाँ पूर्वादि दिशाओं में नमेरु, मंदार, संतानक व पारिजात ये चार-चार भव्य सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं।

रयण-रइद-तिण्णि-साल-वेट्ठिदा सिद्धत्थ-रुक्खा सव्वा।
विज्जंति तिय-मेहला-उवरि पावणासगा णियमा।।236।।

अर्थ-नियमत: रत्नों से निर्मित पापनाशक ये सभी सिद्धार्थ वृक्ष तीनों कोटों से वेष्टित और तीन मेखलाओं के ऊपर विद्यमान होते हैं।

सिद्धत्थरुक्ख-मूले, चउदिसासु एगेग-सिद्ध-पडिमा।
रयणमय-विचित्त-पीढ-जुद-कम्म-कद्दम-हारगा य।।237।।

अर्थ-सिद्धार्थ वृक्ष के मूल में चारों दिशाओं में रत्नमयी, अद्भुत पीठों से युक्त व कर्म पंक को हरने वाली एक-एक सिद्ध प्रतिमा होती है।

सस्सद-सिद्ध-पडिमा हु, विज्जमाणा सिद्धत्थ-रुक्खेसुं।
ता हवेंति भव्वाणं, सुहदा सग-सिद्धि-कारगा य।।238।।

अर्थ-सिद्धार्थ वृक्षों पर विराजमान वे शाश्वत सिद्ध प्रतिमाएँ भव्यों के लिए निश्चय से सुख देने वाली व स्वसिद्धि कारक होती हैं।

पत्तेय-सुह-सिद्धत्थ-रुक्खस्स आसिदा माणत्थंभा।
होंति ति-साल-वेट्ठिदा-पीठत्तय-उवरि-चत्तारि हु।।239।।

अर्थ-प्रत्येक शुभ सिद्धार्थ वृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित, तीन पीठों के ऊपर चार मानस्तंभ होते हैं।

सिद्धत्थरुक्ख-कीडण-साल-भवण-ठिदाण कप्पखिदीए।
णिय-णिय-तित्थयरादो, होज्ज बारस-गुणिदो उदयो।।240।।

अर्थ-कल्पभूमि में स्थित सिद्धार्थ वृक्ष, क्रीड़नशाला व भवनों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई से बारह गुनी होती है।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत सभी तीर्थंकरों के समवशरण में कल्पभूमि स्थित सिद्धार्थ वृक्ष, क्रीडनशाला व भवनों की ऊँचाई क्रमशः- 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष प्रमाण थी।

णिय-णिय-धय-पुढवीणं, हवेदि सय जेत्तियो संपसारो।
णिय-णिय-कप्प-खिदीणं, तेत्तिय-मेत्तो हु वित्थारो।।241।।

अर्थ–अपनी–अपनी ध्वज भूमियों का जितना विस्तार होता है उतना मात्र ही विस्तार अपनी–अपनी कल्पभूमियों का होता है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत सर्व तीर्थंकरों के समवशरण में कल्पभूमि का विस्तार क्रमशः $\frac{264}{288}$ योजन, $\frac{253}{288}$ यो., $\frac{242}{288}$ यो., $\frac{231}{288}$ यो., $\frac{220}{288}$ यो., $\frac{209}{288}$ यो., $\frac{198}{288}$ यो., $\frac{187}{288}$ यो., $\frac{176}{288}$ यो., $\frac{165}{288}$ यो., $\frac{154}{288}$ यो., $\frac{143}{288}$ यो., $\frac{132}{288}$ यो., $\frac{121}{288}$ यो., $\frac{110}{288}$ यो., $\frac{99}{288}$ यो., $\frac{88}{288}$ यो., $\frac{77}{288}$ यो., $\frac{66}{288}$ यो., $\frac{55}{288}$ यो., $\frac{44}{288}$ यो., $\frac{33}{288}$ यो., $\frac{55}{576}$ कोस, $\frac{44}{576}$ कोस प्रमाण था।

कप्पखिदीइ पडि-वीहि-आसिद-पासभागेसु उच्छेहो।
चउ-चउ-णट्टयसाला, णिय-सिद्धत्थ-रुक्ख-सरिसो हु।।242।।

अर्थ–कल्पभूमि के प्रति वीथी के आश्रित पार्श्वभागों में अपने सिद्धार्थ वृक्ष के सदृश ऊँचाई वाली चार–चार नाट्यशालाएँ होती हैं।

पंच-भूमि-विहूसिदा, बत्तीस-रंगभूमि-संजुत्ता य।
सव्वा णट्टयसाला, णच्चंत-जोइसिय-कण्णाहि।।243।।

अर्थ–ये सभी नाट्यशालाएँ पाँच भूमियों (मंजिलों) से विभूषित बत्तीस रंगभूमियों से संयुक्त व नृत्य करती हुई ज्योतिषी कन्याओं से युक्त होती हैं।

जं कला-पदंसणस्स, पमुह-ठाणं होज्जा हु सालाए।
तं पहाण-कला-थलं, रंगमंच-णामेण जाणह।।244।।

अर्थ–नाट्यशाला में कला प्रदर्शन का जो प्रमुख स्थान होता है उस प्रधान कला स्थल को रंगमंच नाम से जानना चाहिए।

सुवण्णमया खंभा हु, सोहंते फडिगमणिमया भित्ती।
णहफासग-मणोहरा, पत्तेयणाडयसालाए।।245।।

अर्थ-प्रत्येक नाट्यशाला में नभस्पर्शी मनोहर सुवर्णमय खंभे एवं स्फटिक मणि से निर्मित दीवारें सुशोभित होती हैं।

सुहणाडयसालाए, विज्जु-विलसिअं व सरदरिदूए हु।
णच्चंता सुरंगणा, हरंति चित्तं सव्व-जणाण।।246।।

अर्थ-शुभ नाट्यशाला में शरद ऋतु में विद्युत् विलास के समान नृत्य करती देवांगनाएँ सभी लोगों के चित्त का हरण करती हैं।

चतुर्थ वेदी व भवन भूमि

णिय-पढम-वेदि-सरिसा, मणोहिराम-चदुत्थ-वेदी तादु।
अत्थ तह भवणवासी, देवा दार-रक्खगा होज्ज।।247।।

अर्थ-उसके आगे अपनी प्रथम वेदी के समान अत्यंत सुंदर चतुर्थ वेदी होती है विशेषता यह है कि यहाँ भवनवासी देव द्वार रक्षक होते हैं।

सत्तमा भवण-भूमी, अइ-सुंदर-रयण-खचिद-भवण-जुदा।
महुर-संगीद-संजुद-वज्ज-जंताणि होंति जेसुं।।248।।

अर्थ-इसके आगे अतिसुंदर रत्नखचित भवनों से युक्त सप्तम भवन भूमि होती है जिनमें मधुर संगीत से युक्त वाद्य यंत्र होते हैं।

वज्जमूलमय-गिहाणि, चंदकंतणिम्मिदभित्तिजुत्ताणि।
भवणभूमीए उच्च-हिरण्णखंभजुद-सुरम्माणि।।249।।

अर्थ-भवन भूमि में वज्र की नींव वाले, चंद्रकांत मणि से निर्मित दीवार से युक्त, ऊँचे स्वर्ण के खंभे वाले सुरम्य भवन हैं।

सुसेज्जाइ-सुविहाजुद-एग-बे-ते-चउखंड-जुद-गिहाणि।
सुंदर-सेद-भवणाणि, जोइसिणा-विणिम्मिदाणीव।।250।।

अर्थ–सुशय्यादि सुविधाओं से युक्त, एक, दो व तीन खंड वाले, सुंदर श्वेत भवन ऐसे सुशोभित होते हैं मानो चंद्रमा की चांदनी से ही उनका निर्माण हुआ हो।

ताणि भवणाणि होज्जा, धूणिय-धयेहि वर-तोरण-जुदाणि।
एगेगे भवणम्मि य, परम-वीयराय-जिणबिंबं।।251।।

अर्थ–वे भवन कंपित (लहराती हुई) ध्वजाओं व उत्तम तोरणों से युक्त होते हैं। एक-एक भवन में परम वीतराग जिनबिंब होते हैं।

तत्थ कुव्वं भव्वा, अहिसेग-सहिद-अच्चणं भावेहि।
णच्च-वज्जरव-सुमहुर-गीद-जुदा-भवुदहि-सोसगं।।252।।

अर्थ–वहाँ नृत्य, वाद्यों के स्वर व सुमधुर गीतों से युक्त भव्य जीव भावों से जिनेन्द्र भगवान् की भवोदधि शोषक अभिषेक सहित अर्चना करते हैं।

उववणादि-सव्व-पुव्व-सरिसाइं भवण-भूमि-वित्थारो।
वित्थारादो आदिम-वेदीइ एयारस-गुणिदो।।253।।

अर्थ–यहाँ उपवन आदि सब पूर्व के सदृश होते हैं। इन भवन भूमियों का विस्तार अपनी प्रथम वेदी के विस्तार से ग्यारह गुना होता है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में भवनभूमियों का विस्तार क्रमशः– $\frac{264}{144}$ कोस, $\frac{253}{144}$ को., $\frac{242}{144}$ को., $\frac{231}{144}$ को., $\frac{220}{144}$ को., $\frac{209}{144}$ को., $\frac{198}{144}$ को., $\frac{187}{144}$ को., $\frac{176}{144}$ को., $\frac{165}{144}$ को., $\frac{154}{144}$ को., $\frac{143}{144}$ को., $\frac{132}{144}$ को., $\frac{121}{144}$ को., $\frac{110}{144}$ को., $\frac{99}{144}$ को., $\frac{88}{144}$ को., $\frac{77}{144}$ को.,

$\frac{66}{144}$ को., $\frac{55}{144}$ को., $\frac{44}{144}$ को., $\frac{33}{144}$ को., $\frac{55}{288}$ को., $\frac{11}{72}$ कोस प्रमाण था।

भवणभूमि-पासेसुं, णव-थूहा पत्तेय-वीहि-मज्झे।
अरिहंत-सिद्धाणं च, वत्ता मणोहर-पडिमाहिं।।254।।

अर्थ-भवनभूमि के पार्श्व भागों में प्रत्येक वीथी के मध्य अरिहंत व सिद्धों की मनोहर प्रतिमाओं से व्याप्त नौ स्तूप होते हैं।

पउमरायमणिणिम्मिद-णव-णव-थूवा अच्चंतुत्तुंगा।
वडिंसोव्व सुसोहिदा, जिणदेवस्स हु णवलद्धीव।।255।।

अर्थ-पद्म राग मणि से निर्मित सुमेरु के समान अत्यंत ऊँचे नव-नव स्तूप जिनदेव की नव लब्धि के समान सुशोभित होते हैं।

ते सव्वा सुह-थूहा, छत्त-चामरादि-विहव-संजुत्ता।
धय-वसु-मंगल-सहिदा, दिव्व-रयण-विणिम्मिदा तहा।।256।।

अर्थ-वे सभी शुभ स्तंभ छत्र, चंवर आदि वैभव से संयुक्त, ध्वज व अष्ट मंगल द्रव्यों से सहित तथा दिव्य रत्नों से निर्मित होते हैं।

पत्तेय-थूह-मज्झे, सय-सय-मयर-तोरण-दाराइं हु।
करंति भवी थूहाण, अहिसेगच्चण-पदाहिणं च।।257।।

अर्थ-प्रत्येक स्तूप के मध्य में सौ-सौ मकराकार तोरण द्वार होते हैं। भव्य जीव स्तूपों का अभिषेक, अर्चन और प्रदक्षिणा करते हैं।

थूहाणं उच्छेहो, उदय-सरिसो णिय-चेइय-रुक्खाण।
णट्ठ मिमाण पमाणं, तहा दीहत्त-वित्थाराण।।258।।

अर्थ-इन स्तूपों की ऊँचाई अपने चैत्य वृक्षों की ऊँचाई के सदृश है। इनकी दीर्घता व विस्तार का प्रमाण नष्ट हो गया है।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी

पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में स्तूपों की ऊँचाई क्रमशः 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष प्रमाण थी।

अणुवम-विभाय-जुत्ता, थूहा इमे भव्वकूड-णामेण।
पसिद्धा तादु अग्गे, भव्वा खलु ईरंति जम्हा।।259।।

अर्थ-अनुपम कांति से युक्त ये स्तूप भव्य कूट के नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि इनके आगे मात्र भव्य ही जाते हैं।

थूहाण दिव्वकंतिं, ण सक्का सोढुं कया वि अभव्वा।
तम्हा ताण पवेसो, ततो अग्गे णत्थि णियमेण।।260।।

अर्थ-अभव्य जीव स्तूपों की दिव्यकांति को सहन करने में समर्थ नहीं हैं इसीलिए उनका प्रवेश उन स्तूपों के आगे नियम से नहीं होता।

चतुर्थ कोट

णिम्मल-फलिह-सरिसा य, मरगय-मणिमय-चदुत्थ-साला पुण।
चउ-गोउरदार-जुदा, अदिसया मणोभिरमणिज्जा।।261।।

अर्थ-पुनः निर्मल स्फटिक के सदृश अतिशय सुंदर चार गोपुर द्वारों से युक्त मरकत मणिमय चतुर्थ कोट है।

जिणचरणंबुज-भमरा, उक्किट्ठ-रयण-दंड-संजुत्ता य।
कप्पवासी देवा हु, गोउरदार-रक्खगा अत्थ।।262।।

अर्थ-यहाँ जिनेंद्र के चरण कमलों के भ्रमर रूप उत्कृष्ट रत्न दंड से संयुक्त कल्वासी देव गोपुर द्वारों के रक्षक हैं।

पुरुदेव-सिरिउसहस्स, समवसरणे सालाइ वित्थारो।
अट्ठासि-अहिय-बे-सय-विभत्ता चउवीस-कोसा हु।।263।।

अर्थ–पुरुदेव श्री ऋषभनाथ के समवशरण में कोट का विस्तार दो सौ अठासी से विभाजित चौबीस 24/288 कोस था।

पुणो अरिट्ठणेमिजिण-पेरंतं सालाणं वित्थारो।
एगेग-कोस-हीणा, णिद्दिट्ठो-जिणवरिंदेहिं।।264।।

अर्थ–पुनः श्री अरिष्टनेमिजिन पर्यंत कोटों का विस्तार (भाज्य राशि में से) एक-एक कोस हीन होता गया ऐसा जिनवरेंद्रों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

पासणाहे छत्तीस-हिद-पणवीसाहिय-छस्सय-दंडा।
वीरम्मि णव-भाजिदा, पणवीस-समहिद-सय-दंडा।।265।।

अर्थ–श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में छत्तीस से विभाजित छह सौ पच्चीस 625/36 धनुष था एवं श्री वीर के समवशरण में नौ से भाजित एक सौ पच्चीस (125/9) धनुष था।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत तीर्थंकरों के समवशरण में चतुर्थ कोट का विस्तार क्रमशः $\frac{24}{288}$ कोस, $\frac{23}{288}$ को., $\frac{22}{288}$ को., $\frac{21}{288}$ को., $\frac{20}{288}$ को., $\frac{19}{288}$ को., $\frac{18}{288}$ को., $\frac{17}{288}$ को., $\frac{16}{288}$ को., $\frac{15}{288}$ को., $\frac{14}{288}$ को., $\frac{13}{288}$ को., $\frac{12}{288}$ को., $\frac{11}{288}$ को., $\frac{10}{288}$ को., $\frac{9}{288}$ को., $\frac{8}{288}$ को., $\frac{7}{288}$ को., $\frac{6}{288}$ को., $\frac{5}{288}$ को., $\frac{4}{288}$ को., $\frac{3}{288}$ को., $\frac{625}{36}$ धनुष, $\frac{125}{9}$ धनुष प्रमाण था।

धनुष में–$166\frac{2}{3}$ ध., $159\frac{13}{18}$, $152\frac{7}{9}$, $145\frac{5}{6}$, $138\frac{8}{9}$,

$131\frac{17}{18}$, 125, $118\frac{1}{18}$, $111\frac{1}{9}$, $104\frac{1}{6}$, $97\frac{2}{9}$, $90\frac{5}{18}$, $83\frac{1}{3}$, $76\frac{7}{18}$, $69\frac{4}{9}$, $62\frac{1}{2}$, $55\frac{5}{9}$, $48\frac{11}{18}$, $41\frac{2}{3}$, $34\frac{13}{18}$, $27\frac{7}{9}$, $20\frac{5}{6}$, $17\frac{13}{36}$, $13\frac{8}{9}$ धनुष प्रमाण चतुर्थ कोट का विस्तार जानना चाहिए।

श्री मंडप भूमि

तत्तो हु अट्ठमा सिरि-मंडव-भूमी गणहर-अप्पडिमा।
वर-रयण-थंभ-ठिदा य, मुत्ताजालाइ-सुसोहिदा।।266।।

अर्थ-उसके आगे उत्कृष्ट रत्नों के स्तंभों पर स्थित-मुक्ताजालादि से सुशोभित मनहर, अप्रतिम अष्टम श्री मंडप भूमि होती है।

अइविहवजुदभित्तीसु, उद्धडो तह रयणमयखंभेहिं।
दगणिम्मिदणिम्मलसिरि-मंडवो तिलोयसिरि-जुत्तो।।267।।

अर्थ-अति वैभव से युक्त दीवारों पर रत्नमय खंभों से खड़ा हुआ व स्फटिक मणि से निर्मित निर्मल श्री मंडप बना हुआ था। जो तीनों लोकों की लक्ष्मी से युक्त था।

विणिम्मल-फलिह-णिम्मिद-सोलस-भित्तीणं अंतरालम्मि।
बारस-कोट्ठा रम्मा, भव्व-जीवाणं होंति सया।।268।।

अर्थ-विनिर्मल स्फटिक से निर्मित सोलह दीवालों के अंतराल में भव्य जीवों के लिए सदा रम्य बारह कोठे होते हैं।

कोट्ठाणं उस्सेहो, भणिदो बारस-गुणिदो गणहरेहि।
सग-सग-तित्थयराणं, परमोरालिय-सरीरादो।।269।।

अर्थ-गणधर देवों द्वारा इन कोठों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकरों की परमौदारिक देह से बारह गुनी कही गई है।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में कोठों की ऊँचाई क्रमशः 6000 धनुष, 5400 ध., 4800 ध., 4200 ध., 3600 ध., 3000 ध., 2400 ध., 1800 ध., 1200 ध., 1080 ध., 960 ध., 840 ध., 720 ध., 600 ध., 540 ध., 480 ध., 420 ध., 360 ध., 300 ध., 240 ध., 180 ध., 120 ध., 27 ध., 21 धनुष प्रमाण थी।

बारस-वग्गेणं हिद-विंसदि-समहिद-एग-सयं कोसा।
उसहस्स समवसरणे, विरल्लो पवित्त-कोट्ठाणं।।270।।

अर्थ–श्री ऋषभनाथ के समवशरण में पवित्र कोठों का विस्तार बारह के वर्ग से भाजित एक सौ बीस (120/144) कोस था।

णेमिणाह-पेरंतं, पंच-पंच-हीणा कमसो तत्तो।
दुसय-अट्ठासि-भाजिद-पणवीस-कोसा पासजिणे।।271।।

अर्थ–इसके आगे क्रमशः श्री नेमिनाथ पर्यंत, (भाज्य राशि में से) पाँच-पाँच कम होते गए। श्री पार्श्वनाथ जिन के समवशरण में दो सौ अठासी से भाजित पच्चीस 25/288 कोस था।

अट्ठाइज्ज-सयाहिय-सहस्स दंडा भाजिदा णवेहिं।
वड्ढमाणस्स हु धम्म-सहाए सुकोट्ठ-वित्थारो।।272।।

अर्थ–श्री वर्द्धमान स्वामी की धर्मसभा में कोठों का विस्तार नौ से भाजित एक हजार ढ़ाई सौ 1250/9 धनुष था।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकरों के समवशरण में कोठों का विस्तार क्रमशः– $\frac{120}{144}$ कोस, $\frac{115}{144}$ को., $\frac{110}{144}$ को., $\frac{105}{144}$ को., $\frac{100}{144}$ को., $\frac{95}{144}$ को., $\frac{90}{144}$ को., $\frac{85}{144}$ को., $\frac{80}{144}$ को., $\frac{75}{144}$ को., $\frac{70}{144}$ को.,

$\frac{65}{144}$ को., $\frac{60}{144}$ को., $\frac{55}{144}$ को., $\frac{50}{144}$ को., $\frac{45}{144}$ को., $\frac{40}{144}$ को., $\frac{35}{144}$ को., $\frac{30}{144}$ को., $\frac{25}{144}$ को., $\frac{20}{144}$ को., $\frac{15}{144}$ को., $\frac{25}{288}$ कोस तथा श्री महावीर स्वामी का $\frac{1250}{9}$ धनुष प्रमाण था।

धनुष में–$1666\frac{2}{3}$, $1597\frac{2}{9}$, $1527\frac{7}{9}$, $1458\frac{1}{3}$, $1388\frac{8}{9}$, $1319\frac{4}{9}$, 1250, $1180\frac{5}{9}$, $1111\frac{1}{9}$, $1041\frac{2}{3}$, $972\frac{2}{9}$, $902\frac{7}{9}$, $833\frac{1}{3}$, $763\frac{8}{9}$, $694\frac{4}{9}$, 625, $555\frac{5}{9}$, $486\frac{1}{9}$, $416\frac{2}{3}$, $347\frac{2}{9}$, $277\frac{7}{9}$, $208\frac{1}{3}$, $173\frac{11}{18}$, $138\frac{8}{9}$ धनुष जानना चाहिए।

कोट्ठाण अब्भंतरे, इमाण पुव्वादि-पदाहिण-कमेण।
चिट्ठंति बारस-गणा, पुढो पुढो भत्ति-रायेणं।।273।।

अर्थ–इन कोठों के भीतर पूर्वादि प्रदक्षिण क्रम से भक्ति के अनुराग से पृथक्-पृथक् बारह गण बैठते हैं।

बारस-कोट्ठेसुं चिय, पढमे बुद्धि-आइ-इड्ढि-धारगा।
पडुसा रिसि गणेसा, वादिणो सिक्खगा चिट्ठंति।।274।।

अर्थ–बारह कोठों में से पहले कोठ में बुद्धि आदि ऋद्धि के धारक, सुसंयमित ऋषि, गणधर, वादी, शिक्षकादि मुनि बैठते हैं।

विदिये कोट्ठम्मि कप्प-वासि-देवीउ चिट्ठंति भत्तीइ।
तिदिये णिप्पच्चवाय-पसंत-अज्जिया साविगा य।।275।।

अर्थ–दूसरे कोठे में भक्तिपूर्वक कल्पवासिनी देवियाँ एवं तीसरे कोठे में विशुद्ध प्रशांत आर्यिका व आर्यिकाएँ बैठती हैं।

जोइसिय-देवीओ य, उच्छुआ जिणच्चणाए चदुत्थे।
पसम-भाव-संजुत्ता, पंचमे विंतर-देवीओ।।276।।

अर्थ–चतुर्थ कोठे में जिनार्चना के लिए उत्सुक ज्योतिष देवियाँ और पंचम में प्रशम भाव संयुक्त व्यंतर देवियाँ बैठती हैं।

छट्ठम्मि हु भवणवासि-देवी अवहियमणा जिणभत्तीइ।
सत्तमे भवणसुराय, दसविहा असुरकुमारादी।।277।।

अर्थ–छठे कोठे में जिनभक्ति में एकाग्रचित भवनवासिनी देवियाँ व सप्तम कोठे में असुरकुमारादि दस प्रकार के भवनवासी देव होते हैं।

अट्ठमे किण्णरादी, अट्ठहा विंतरा जिणिंदभत्ता।
णवमे जोइसिय-सुरा, णिम्मल-परिणाम-संजुत्ता।।278।।

अर्थ–आठवें कोठे में किन्नरादि आठ प्रकार के जिन भक्त व्यंतर देव व नवमें कोठे में निर्मल परिणाम से संयुक्त ज्योतिष देव होते हैं।

अच्चुद-सग्गंत-सव्व-देवा सोहम्मादीदो दसमे।
चक्कि-आइ-सव्वणरा, चिट्ठंति सय एयारसमे।।279।।

अर्थ–दसवें कोठे में सौधर्म इंद्रादि से अच्युत स्वर्ग पर्यंत सभी देव तथा ग्यारहवें कोठे में चक्रवर्ती आदि सभी मनुष्य बैठते हैं।

बारसमे सीहादी, तिरिया चिट्ठंति कल्लाणकंखी।
मित्तभावेण वइरं, विहाय जम्म-जाद-विरोही।।280।।

अर्थ–बारहवें कोठे में कल्याणाकांक्षी सिंह आदि तिर्यंच जीव बैठते हैं। यहाँ जन्म जात विरोधी भी बैर भाव को त्यागकर मैत्री भाव से बैठते हैं।

आविट्ठो जह चंदो, णक्खत्ताइ-जोदिस-विमाणेहिं।
सोहदि तह तित्थयरो, भव्वाणं बेदह-सहासु वि।।281।।

अर्थ–जिस प्रकार चंद्रमा नक्षत्रादि ज्योतिष विमानों से आविष्ट होता है उसी प्रकार भव्यों की बारह सभाओं में तीर्थंकर प्रभु सुशोभित होते हैं।

इत्थं-सव्वा भव्वा, णियद-कमेण चिट्ठित्ता सुणंते।
दिव्वज्झुणि-मघहारग-मुस्सुक्का सय कल्लाणाय।।282।।

अर्थ-इस प्रकार कल्याण के लिए उत्सुक सभी भव्य जीव सदा नियत क्रम से बैठकर अघहारक दिव्यध्वनि को सुनते हैं।

फलिह-विणिम्मिदाओ य, होज्जा पंचम-वेदीओ तत्तो।
पसप्पादि-संजुद-णिय-णिय-चदुत्थ-साल-सरिसाओ।।283।।

अर्थ-उसके आगे स्फटिक मणि से विनिर्मित अपने-अपने चतुर्थ कोट के सदृश विस्तार आदि से संयुक्त पंचम वेदी होती है।

प्रथम पीठ

तादो हु वेरुलिय-मणि-विणिम्मिदा रमणिज्ज-पढम-पीढं।
णिय-माणत्थंभ-पहुदि-उदय-सरिसो पीढुस्सेहो।।284।।

अर्थ-उसके आगे वैडूर्णमणि से निर्मित रमणीय प्रथम पीठ होती है पीठों की ऊँचाई अपने मानस्तंभादि की ऊँचाई के सदृश होती है।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में प्रथम पीठ की ऊँचाई क्रमशः- 8 धनुष, $7\frac{2}{3}$ ध., $7\frac{1}{3}$ ध., 7 ध., $6\frac{2}{3}$ ध., $6\frac{1}{3}$ ध., 6 ध., $5\frac{2}{3}$ ध., $5\frac{1}{3}$ ध., 5 ध., $4\frac{2}{3}$ ध., $4\frac{1}{3}$ ध., 4 ध., $3\frac{2}{3}$ ध., $3\frac{1}{3}$ ध., 3 ध., $2\frac{2}{3}$ ध., $2\frac{1}{3}$ ध., 2 ध., $1\frac{2}{3}$ ध., $1\frac{1}{3}$ ध., 1 ध., $\frac{5}{6}$ ध., $\frac{2}{3}$ धनुष प्रमाण थी।

पढम-पीढेसुं होंति, पत्तेयं कोट्ठ-पवेसदारम्मि।
पत्तेय-वीहि-सम्मुह-सोलस-सोलस-सोवाणाणि।।285।।

अर्थ–प्रथम पीठों के ऊपर बारह कोठों में से प्रत्येक कोठ के प्रवेश द्वार में व प्रत्येक वीथी के सन्मुख सोलह–सोलह सोपान होते हैं।

बारस-पविभत्ता चउ-वीस-कोसा आदिदेव-णाहस्स।
णिम्मल-समवसरणम्मि, परिणाहो य पढमपीढस्स।।286।।

अर्थ–श्री आदिनाथ देव के निर्मल समवशरण में प्रथम पीठ का विस्तार बारह से विभाजित चौबीस 24/12 कोस था।

णेमिणाह-पेरंतं, एगेग-हीणा तत्तो कमेणं।
चउवीस-विभत्ता पण-कोसा य पासस्स सहाए।।287।।

अर्थ–उसके आगे क्रम से श्री नेमिनाथ पर्यंत (भाज्य राशि में से) एक–एक कम होता गया। श्री पार्श्वनाथ की सभा में चौबीस से विभाजित पाँच (5/24) कोस था।

पातिदमारदप्पस्स, वड्ढमाणस्स सुह-समवसरणम्मि।
छब्भाजिद-एग-कोस-परिमाणं सया विजाणेह।।288।।

अर्थ–कामदेव के दर्प को नष्ट करने वाले श्री वर्द्धमान स्वामी के शुभ समवशरण में प्रथम पीठ का विस्तार छह से भाजित एक (1/6) कोस प्रमाण जानना चाहिए।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में प्रथम पीठ का विस्तार

क्रमशः– $\frac{24}{12}$ अर्थात् 2 कोस, $\frac{23}{12}$, $\frac{22}{12}$, $\frac{21}{12}$, $\frac{20}{12}$, $\frac{19}{12}$, $\frac{18}{12}$, $\frac{17}{12}$, $\frac{16}{12}$, $\frac{15}{12}$, $\frac{14}{12}$, $\frac{13}{12}$, $\frac{12}{12}$ अर्थात् 1 कोस, $\frac{11}{12}$, $\frac{10}{12}$, $\frac{9}{12}$, $\frac{8}{12}$, $\frac{7}{12}$, $\frac{6}{12}$, $\frac{5}{12}$, $\frac{4}{12}$, $\frac{3}{12}$, $\frac{5}{24}$, $\frac{1}{6}$ कोस प्रमाण था।

प्रथम पीठ परिधि

पीढाणं परिहीओ, णिय-णिय-पसप्पादो तिण्णिगुणिदा।
उक्किट्ठ-रयण-णिम्मिद-अप्पडिम-अइ-रमणिज्जाणं।।289।।

अर्थ-उत्कृष्ट रत्नों से निर्मित, अप्रतिम, अति रमणीय पीठों की परिधियाँ अपने अपने विस्तार से तीन गुनी होती हैं।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में पीठों की परिधियों का प्रमाण क्रमशः $\frac{24}{4}$ अर्थात् 6 कोस, $\frac{23}{4}$, $\frac{22}{4}$, $\frac{21}{4}$, $\frac{20}{4}$, $\frac{19}{4}$, $\frac{18}{4}$, $\frac{17}{4}$, $\frac{16}{4}$, $\frac{15}{4}$, $\frac{14}{4}$, $\frac{13}{4}$, $\frac{12}{4}$ अर्थात् 3 कोस, $\frac{11}{4}$, $\frac{10}{4}$, $\frac{9}{4}$, $\frac{8}{4}$ अर्थात् 2 कोस, $\frac{7}{4}$, $\frac{6}{4}$, $\frac{5}{4}$, $\frac{4}{4}$ अर्थात् 1 कोस, $\frac{3}{4}$, $\frac{5}{8}$, $\frac{1}{2}$ कोस था।

परिवट्टुलेसु पूयण-मंगलदव्व-जुद-पीढेसुं ठंति।
जक्खिंदा चउदिसासु, सिरोवरि धरिय धम्मचक्कं।।290।।

अर्थ-गोलाकार, पूजन व मंगल द्रव्यों से युक्त इन पीठों पर चारों दिशाओं में यक्षेन्द्र सिर के ऊपर धर्मचक्र धारण कर स्थित रहते हैं।

पीठ मेखला

अट्ठ-हिद-छस्सहस्सा, दंडा पीढ-मेहला-विरल्लो य।
पावण-समवसरणम्मि, अच्चुद-सहिण्णु-उसह-जिणस्स।।291।।

अर्थ-अच्युत-सहिष्णु श्री आदिनाथ जिन के पावन समवशरण में पीठ की मेखला का विस्तार आठ से विभाजित छह हजार (6000/8) धनुष था।

अड्ढाइज्ज-सयूणा, कमसो सिरि णेमिणाह-पेरंतं।
पासे अट्ठ-विभत्ता, पणवीसहिय-छस्सय-दंडा।।292।।

अर्थ-क्रमशः श्री नेमिनाथ पर्यंत भाज्य राशि में से ढ़ाई सौ कम होता गया। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में मेखला का विस्तार आठ से विभाजित छह सौ पच्चीस (625/8) धनुष था।

भवि-हिदयंबुजुदयाय, मुत्तघण-अक्क-सिरि-वड्ढमाणस्स।
समवसरणे दुभाजिद-पंचविंसदि-समहिद-सयं च।।293।।

अर्थ-भव्यों के हृदय रूपी कमल को विकसित करने के लिए मेघरूप आच्छादन से मुक्त सूर्य के समान श्री वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में दो से भाजित एक सौ पच्चीस (125/2) धनुष था।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में प्रथम पीठ की मेखला का विस्तार क्रमशः $\frac{6000}{8}$ धनुष, $\frac{5750}{8}$, $\frac{5500}{8}$, $\frac{5250}{8}$, $\frac{5000}{8}$, $\frac{4750}{8}$, $\frac{4500}{8}$, $\frac{4250}{8}$, $\frac{4000}{8}$, $\frac{3750}{8}$, $\frac{3500}{8}$, $\frac{3250}{8}$, $\frac{3000}{8}$, $\frac{2750}{8}$, $\frac{2500}{8}$, $\frac{2250}{8}$, $\frac{2000}{8}$, $\frac{1750}{8}$, $\frac{1500}{8}$, $\frac{1250}{8}$, $\frac{1000}{8}$, $\frac{750}{8}$, $\frac{625}{8}$, $\frac{125}{2}$ धनुष प्रमाण जानना चाहिए।

बेदह-गण-पहाणा हु, पढम-पीढेसु जिणं पदिक्खणंति।
पुण पुण अच्चंते अहिणुंति अह ठंति सग-कोट्ठेसु।।294।।

अर्थ-बारह गणों के प्रधान उन प्रथम पीठों पर जिनेन्द्र भगवान की प्रदक्षिणा करते हैं पुनः पुनः अर्चना व नमस्कार करते हैं पुनः अपने कोठों में बैठ जाते हैं।

द्वितीय पीठ वर्णन

पढम-पीढोवरि विदिय-पीढाणि सहंति उसहस्स सहाइ।
चउ-दंडा विजाणेह, उस्सेहो य विदिय-पीढस्स।।295।।

अर्थ-प्रथम पीठों के ऊपर द्वितीय पीठ शोभायमान होती हैं। श्री वृषभनाथ के समवशरण में द्वितीय पीठ का उत्सेध चार धनुष जानना चाहिए।

पुण छब्भाजिदा एग-णूणा य अरिट्ठणेमि-पज्जंतं।
पासस्स समवसरणे, बारस-भाजिद-पंच-दंडा।।296।।

अर्थ-पुनः श्री अरिष्ट नेमि पर्यंत छह से भाजित एक (1/6) भाग कम होता गया। श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में बारह से भाजित पाँच (5/12) धनुष था।

णिरय-जिदखुल्लयवादिसासण-वड्ढमाणस्स सुसहाए।
विदिय-पीढ-उव्वेहो, एयदंडा तिण्णिविभत्ता।।297।।

अर्थ-घातिया कर्म रूपी रज से रहित, क्षुद्रवादियों के शासन को जीतने वाले श्री वर्द्धमान स्वामी की सुसभा में द्वितीय पीठ की ऊँचाई तीन से भाजित एक (1/3) धनुष थी।

विशेषार्थ-श्री वृषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में द्वितीय पीठ की ऊँचाई क्रमशः- $\frac{24}{6}$ अर्थात् 4 धनुष, $\frac{23}{6}$, $\frac{22}{6}$, $\frac{21}{6}$, $\frac{20}{6}$, $\frac{19}{6}$, $\frac{18}{6}$, $\frac{17}{6}$, $\frac{16}{6}$, $\frac{15}{6}$, $\frac{14}{6}$, $\frac{13}{6}$, $\frac{12}{6}$, $\frac{11}{6}$, $\frac{10}{6}$, $\frac{9}{6}$, $\frac{8}{6}$, $\frac{7}{6}$, $\frac{6}{6}$, $\frac{5}{6}$, $\frac{4}{6}$, $\frac{3}{6}$ एवं श्री पार्श्वनाथ भगवान् के समवशरण में $\frac{5}{12}$ और श्री वीर प्रभु के समवशरण में $\frac{1}{3}$ धनुष प्रमाण थी।

उसहस्स समवसरणे, विदिय-पीढस्स मेहला-पसप्पो।
अट्ठेहिं पविभत्ता, छस्सहस्सा दंडा जाणह।।298।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ जिन के समवशरण में द्वितीय पीठ की मेखला का विस्तार आठ से विभाजित छह हजार (6000/8) धनुष जानो।

णेमिजिणिंदंतं पुण, अट्ठाइज्ज-सय-हीणा कमेणं।
पासे पणवीसाहिय-छस्सया दंडा अट्ठहिदा।।299।।

अर्थ-पुनः क्रमशः श्री नेमिजिनेंद्र पर्यंत भाज्य राशि में से ढाई सौ कम होते गए। श्री पार्श्वनाथ भगवान् के समवशरण में आठ से भाजित छह सौ पच्चीस (625/8) धनुष था।

जीवाइ-तच्च-भासग-सिरिवड्ढमाणस्स समवसरणम्मि।
बेविभत्त-पणविंसदि-समहिद-सय-दंडा-विरल्लो।।300।।

अर्थ-जीवादि तत्त्वों के भासक श्री वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में मेखला का विस्तार दो से भाजित एक सौ पच्चीस (125/2) धनुष था।

विशेषार्थ-श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में द्वितीय पीठ की मेखला का विस्तार क्रमशः $\frac{6000}{8}$ धनुष, $\frac{5750}{8}$, $\frac{5500}{8}$, $\frac{5250}{8}$, $\frac{5000}{8}$, $\frac{4750}{8}$, $\frac{4500}{8}$, $\frac{4250}{8}$, $\frac{4000}{8}$, $\frac{3750}{8}$, $\frac{3500}{8}$, $\frac{3250}{8}$, $\frac{3000}{8}$, $\frac{2750}{8}$, $\frac{2500}{8}$, $\frac{2250}{8}$, $\frac{2000}{8}$, $\frac{1750}{8}$, $\frac{1500}{8}$, $\frac{1250}{8}$, $\frac{1000}{8}$, $\frac{750}{8}$, $\frac{625}{8}$, $\frac{125}{2}$ धनुष प्रमाण था।

सुवण्णमय-पीढाइं, आरोहिदुं हवेंति चउदिसासुं।
पंचवण्ण-रयण-रइद-अट्ठ-अट्ठ-सुसोवाणाइं।।301।।

अर्थ–उन स्वर्णमय पीठों पर चढ़ने के लिए चारों दिशाओं में पाँच वर्ण वाले रत्नों से निर्मित आठ–आठ सोपान होते हैं।

सीहाइ–चिंध–जुत्ता, लंबंता बहु–धया मणि–थंभेसु।
तत्थ पूयण–दव्वाणि, सहंति णवणिही अहिरामा।।302।।

थुड्डुहीराइ–मंगल–दव्वाइं सुगंधिदा धूवघडा।
लोयम्मि मंगल्ला हु, विदिय–पीढोवरि विज्जंते।।303।।

अर्थ–वहाँ द्वितीय पीठों पर मणिमय स्तंभों पर लटकती हुई सिंह आदि चिह्न से युक्त बहुत ध्वजाएँ सुशोभित होती हैं। बहुत सुंदर पूजन द्रव्य व नवनिधियाँ होती हैं। लोक में मंगलकारी चामर आदि मंगल द्रव्य, सुगंधित धूप घट विद्यमान होते हैं।

छण्णउदि–पविभत्ता हु, विंसदि–समहिद–एग–सयं कोसा।
उसहस्स समवसरणे, सुवित्थारो विदिय–पीढस्स।।304।।

अर्थ–श्री वृषभनाथ के समवशरण में द्वितीय पीठ का विस्तार छयानवे से भाजित एक सौ बीस (120/96) कोस था।

तित्थयर–णेमिजिणिंद–पेरंतं पंचूणा कमेणं च।
चउघणगुणिद–तियेहिं हिद–पण–वग्ग–कोसा पासे।।305।।

अर्थ–क्रमशः तीर्थंकर श्री नेमि जिनेंद्र पर्यंत भाज्य राशि में से पाँच–पाँच कम होते जाते हैं। श्री पार्श्वनाथ जिन के समवशरण में चार के घन से गुणित तीन (64x3=192) के द्वारा विभाजित पाँच का वर्ग अर्थात् पच्चीस (25/192) कोस था।

अडदालीस–विभत्ता, पंचकोसा य सिरिवड्ढमाणस्स।
अदिसय–विहव–संपण्ण–धणद–णिम्मिद–समवसरणम्मि।।306।।

अर्थ–अतिशय वैभव से संपन्न, कुबेर द्वारा निर्मित श्री वर्द्धमान स्वामी के समवशरण में द्वितीय पीठ का विस्तार अड़तालीस से भाजित पाँच (5/48) कोस था।

विशेषार्थ–श्री ऋषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में द्वितीय पीठ का विस्तार क्रमशः $\frac{120}{96}$ कोस, $\frac{115}{96}$ को., $\frac{110}{96}$ को., $\frac{105}{96}$ को., $\frac{100}{96}$ को., $\frac{95}{96}$ को., $\frac{90}{96}$ को., $\frac{85}{96}$ को., $\frac{80}{96}$ को., $\frac{75}{96}$ को., $\frac{70}{96}$ को., $\frac{65}{96}$ को., $\frac{60}{96}$ को., $\frac{55}{96}$ को., $\frac{50}{96}$ को., $\frac{45}{96}$ को., $\frac{40}{96}$ को., $\frac{35}{96}$ को., $\frac{30}{96}$ को., $\frac{25}{96}$ को., $\frac{20}{96}$ को., $\frac{15}{96}$ को., $\frac{25}{192}$ को., $\frac{5}{48}$ कोस प्रमाण था।

तृतीय पीठ का विस्तार व ऊँचाई

उवरि विदिय-पीढाणं, बहुविह-रयण-खचिद-तिदिय-पीढाणि।
सोहंति चउदिसासुं, अट्ठट्ठ-रयण-सोवाणाणि।।307।।

अर्थ–उन द्वितीय पीठों के ऊपर बहुत प्रकार के रत्नों से खचित तीसरी पीठ होती है। उनकी चारों दिशाओं में आठ-आठ रत्नमय सोपान होते हैं।

परिमंडलाण ताणं, उव्वेहो अइ-सुहयर-पीढाणं।
णिय-णिय-विदिय-पीढाण, सरिसो मुणेदव्वो णिच्चं।।308।।

अर्थ–उन वृत्ताकार अतिसुखकर पीठों का उत्सेध नित्य अपनी-अपनी द्वितीय पीठों के सदृश जानना चाहिए।

ताणं संपसारो य, णिय-णिय-पढम-वित्थाराणं।
चदुत्थ-भाग-पमाणं, होज्ज जिणवरेहि णिद्दिट्ठो।।309।।

ताण परिही साहिया, वित्थारेणं तहा तिण्णिगुणिदा।
पुण पुण पेक्खणीयाण, पीढाणं दुक्ख-हारगाण।।310।।

अर्थ–पुनः पुनः देखने के योग्य, दुःख हारक उन पीठों का विस्तार अपनी–अपनी प्रथम पीठों के विस्तारों का चतुर्थ भाग प्रमाण होता है ऐसा जिनवरों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। तथा परिधि उनके विस्तार से तीन गुने से कुछ अधिक होती है।

विशेषार्थ–श्री वृषभदेव जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में तृतीय पीठ का विस्तार क्रमशः–1000 धनुष, $958\frac{1}{3}$, $916\frac{2}{3}$, 875, $833\frac{1}{3}$, $791\frac{2}{3}$, 750, $708\frac{1}{3}$, $666\frac{2}{3}$, 625, $583\frac{1}{3}$, $541\frac{2}{3}$, 500, $458\frac{1}{3}$, $416\frac{2}{3}$, 375, $333\frac{1}{3}$, $291\frac{2}{3}$, 250, $208\frac{1}{3}$, $166\frac{2}{3}$, 125, $104\frac{1}{16}$, $83\frac{1}{3}$ धनुष जानना चाहिए।

गंधकुटी निरूपण

इमेसु तिदिय-पीढेसु, सोहेज्जा गंधउडी एगेगा।
चामर-किंकिणि-वंदण-मालाहि अदिसय-रमणीया।।311।।

हाराइ-सुसोहिदा य, चंदणगुरुप्पहुदि-धूव-गंधेहि।
परिप्पुया रयण-दीव-पेखिअ-धयाहिं संजुत्ता।।312।।

अर्थ–इन तृतीयों पीठों पर एक-एक गंधकुटी शोभायमान होती है।

यह चँवर, किंकिणी, वंदनमालाओं से अतिशय रमणीय, हार आदि से सुशोभित, चंदन-अगुरु आदि की धूपों की गंधों से परिपूर्ण, रत्न दीप व लहराती हुई ध्वजाओं से संयुक्त होती है।

उसह-सहाए ताए, रुंदायामा य छस्सया दंडा।
पंच-वग्ग-हीणा पुण, तित्थेस-णेमिणाहंतं हु।।313।।

अर्थ–उस गंधकुटी की लंबाई व चौड़ाई श्री ऋषभनाथ जिन की सभा में छह सौ धनुष थी। पुनः श्री नेमिनाथ पर्यंत पाँच के वर्ग अर्थात् 25–25 कम होता गया।

पासम्मि दोण्णि-भाजिद-पंचविंसदि-समहिद-एग-सयं च।
पंचगुणिद-दह-दंडा, सहाए सिरि-वड्ढमाणस्स।।314।।

अर्थ–श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में दो से भाजिद एक सौ पच्चीस (125/2) धनुष तथा श्री वर्द्धमान की सभा में 50 धनुष थी।

विशेषार्थ–श्री वृषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में गंधकुटी की लम्बाई व चौडाई क्रमशः– 600 धनुष, 575, 550, 525, 500, 475, 450, 425, 400, 375, 350, 325, 300, 275, 250, 225, 200, 175, 150, 125, 100, 75, 62½, 50 धनुष प्रमाण थी।

उसहस्स समवसरणे, णवसयदंडा उस्सेहो ताए।
पुण णेमिजिणिंदंतं, चउवीस-हिद-णवसय-हीणा।।315।।

अर्थ–श्री ऋषभनाथ के समवशरण में उस गंधकुटी का उत्सेध नौ सौ धनुष था। पुनः श्री नेमिजिन पर्यंत चौबीस से भाजित नौ सौ (900/24) हीन होता गया।

पासम्मि चउभाजिदा, पणहत्तरि-अहिय-तिण्णिसय-दंडा।
वीरवड्ढमाणम्मि य, पंचहीणा-असीदि-दंडा।।316।।

अर्थ–श्री पार्श्वनाथ के समवशरण में चार से भाजित तीन सौ पचहत्तर (375/4) धनुष था और श्री वीर वर्द्धमान के समवशरण में पाँच कम अस्सी अर्थात् पचहत्तर धनुष था।

विशेषार्थ–श्री ऋषभनाथ जिनेंद्र से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकर के समवशरण में गंधकुटी की ऊँचाई क्रमशः–

900 धनुष, $862\frac{1}{2}$ ध., 825 ध., $787\frac{1}{2}$ ध., 750 ध., $712\frac{1}{2}$ ध., 675 ध., $637\frac{1}{2}$ ध., 600 ध., $562\frac{1}{2}$ ध., 525 ध., $487\frac{1}{2}$ ध., 450 ध., $412\frac{1}{2}$ ध., 375 ध., $337\frac{1}{2}$ ध., 300 ध., $262\frac{1}{2}$ ध., 225 ध., $187\frac{1}{2}$ ध., 150 ध., $112\frac{1}{2}$ ध., $93\frac{3}{4}$ ध., 75 धनुष प्रमाण जाननी चाहिए।

ताणं गंधउडीणं, मज्झम्मि य पादपीढ-सहिदाइं।
उत्तम-फलिह-विणिम्मिद-पूद-मणोण्ण-सिंहासणाणि।।317।।

अर्थ-उन गंधकुटियों के मध्य पादपीठ सहित, उत्तम स्फटिक से विनिर्मित पवित्र, मनोज्ञ सिंहासन होते हैं।

उव्वेहो रयण-जडिद-मुत्ता-घंडाजालाइ-रम्माण।
सिंहासणाण णिय-णिय-तित्थयराणं सुजोग्गो चिय।।318।।

अर्थ-रत्न जड़ित मुक्ता व घंटाओं के जाल से रम्य सिंहासनों का उत्सेध अपने-अपने तीर्थकरों के सुयोग्य ही होता है।

सिंहासणादु चदुरंगुलंतराले आयासे पुज्जा।
वीयराय-सव्वण्हू, धम्मवट्टग-तच्चुवदिट्ठा।।319।।
वंदणीया सया सद-इंदेहिं अट्ठ-पाडिहेर-जुदा।
जिणवरिंद-तित्थयरा, विरायंते अभिरूयंसी।।320।।

अर्थ-वीतरागी, सर्वज्ञ, धर्मप्रवर्तक, तत्त्वोपदिष्टा, शत इंद्रों से वंदनीय, अष्ट महाप्रातिहार्यों से युक्त, सुंदर रूप वाले मनोहर, पूज्य, जिनवरों में इंद्र श्री तीर्थंकर प्रभु सिंहासन से चार अंगुल अंतराल से आकाश में विराजित होते हैं।

अष्टप्रातिहार्य

तित्थयर-पव्वयादो, णिग्गद-सुदसरिदा भवि-सेयत्थं।
दिव्वझुणी णादव्वा, संझा-यालेसुं णियमेण।।321।।

वा गणहर-चक्कवट्टि-आखंडलाइ-जीव-सुपुण्णेणं।
सेसेसु समयेसु अवि, णिस्सरदि जिणस्स दिव्वझुणी।।322।।

अर्थ-नियम से भव्यों के कल्याण के लिए चारों संध्याकालों में तीर्थंकर रूपी पर्वत से निःसृत श्रुत रूपी सरिता दिव्य ध्वनि जाननी चाहिए। अथवा गणधर, चक्रवर्ती, इंद्रादि जीवों के पुण्य से शेष समय में भी श्री जिन की दिव्यध्वनि खिरती है।

मुत्ताजालादि-जुदं, तियिंदुव्व तिलोय-णाह-पदीगं।
छत्तत्तयं विरायदि, सिरोवरि सव्व-तित्थयराण।।323।।

पढम-छत्तं विसालं, तत्तोवरि लहू मण्णदे छत्तं।
तत्तोवरि तादो अवि, लहुछत्तं रजदमय-रम्मं।।324।।

अर्थ-सभी तीर्थंकरों के सिर पर तीन चंद्रमा के समान, मुक्ताजालादि से युक्त, तीन लोक के नाथ के प्रतीक स्वरूप छत्रत्रय विराजित होते हैं। प्रथम छत्र विशाल, उसके ऊपर लघु (उससे छोटा) छत्र माना जाता है व उसके ऊपर उससे भी रजतमय रम्य लघु छत्र होता है।

लंबंत-मुत्तिमाला-घंडा-णिवहादीहिं रमणिज्जा।
सपुप्फ-साहा-सहिदा, अहिरामा तहा रयणमया।।325।।

पत्तेय-तित्थयरस्स, पुढवीकाय-रूव-असोग-रुक्खा।
होज्जा भिण्णा-भिण्णा, आमय-दुक्खप्पणासगा य।।326।।

अर्थ-लटकती हुई मोती की माला, घंटाओं के समूहों आदि से रमणीय, पुष्प व शाखाओं से सहित, अभिराम, रत्नमय, रोग व दुःखों का प्रणाशक पृथ्वीकाय रूप अशोक वृक्ष प्रत्येक तीर्थंकर के भिन्न-भिन्न होते हैं।

जेसिं रुक्ख-मूलम्मि, जिणाण उप्पण्णं केवलणाणं।
ते असोगरुक्खा खलु, सोगहारगा सया जम्हा।।327।।

अर्थ-जिन वृक्षों के मूल में जिनों के केवलज्ञान उत्पन्न हुआ वे अशोक वृक्ष होते हैं क्योंकि वे सदा शोक हारक होते हैं।

उसहादीदो वीरंतं असोग-रुक्खा जाण कमेणं।
णग्गोह-सत्तवण्णा, सालो सरलो विअंगू तह।।328।।

सिरीसो णागरुक्खो, अक्खो तरु-धूलिपलासो तेंदू।
पाडलो जंबू तरू, पिप्पलो दधिपण्णो णंदी।।329।।

तिलगो य अंब-रुक्खो, कंकेली चंपयो बउलो तरू।
मेससिंगो धवो तह, सालो अदिसय-मणोहरा य।।330।।

अर्थ-न्यग्रोध, सप्तपर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, शिरीष, नागवृक्ष, अक्ष (बहेड़ा), धूलिपलाश, तेंदू, पाटल, जंबूवृक्ष, पीपल, दधिपर्ण, नंदी, तिलक, आम्रवृक्ष, कंकेलि (अशोक), चंपक, बकुल वृक्ष, मेषश्रृंग, धव और साल ये क्रमशः श्री ऋषभनाथ से वीर जिन पर्यंत अतिशय मनोहर अशोक वृक्ष जानने चाहिए।

सव्व-असोग-रुक्खाण, उस्सेहो णिय-णिय-तित्थयराणं।
देहावगाहणादो, बारस-गुणिदो मुणेदव्वो।।331।।

अर्थ-अभी अशोक वृक्षों की ऊँचाई अपने अपने तीर्थंकरों की शरीर की अवगाहना से बाहर गुना जानना चाहिए।

उदयायलव्व सिंहासणं उक्किट्ठ-रयण-संजुत्तं हु।
दग-णिम्मिदं णस्सुवरि, सोहदि अक्कोव्व तित्थयरो।।332।।

अर्थ-सिंहासन स्फटिक से निर्मित, उत्कृष्ट रत्नों से संयुक्त, उदयाचल के समान सुशोभित होता है जिसके ऊपर सूर्य के समान तीर्थंकर विराजते हैं।

चउसट्ठि-जक्खदेवा, ससिव्व धवल-चउसट्ठि-चामराणि।
बत्तीसं बत्तीसं, विज्जंते उहय-दिसासुं हु।।333।।

अर्थ–इंदु के समान धवल चौसठ चँवर होते हैं। दोनों दिशाओं में चौसठ यक्षदेव बत्तीस–बत्तीस चँवर ढोरते हैं।

तित्थयर-जिणस्स परम-ओरालिय-देहादु विणिग्गदा च।
आभा हि भामंडलं, जिदकोडिदिणयररजणिंदं।।334।।

अर्थ–तीर्थंकर जिनेन्द्र की परमौदारिक देह से विनिर्गत करोडों चंद्र सूर्यों को जीतने वाली आभा ही भामंडल है।

भामंडलम्मि भव्वा, पस्संते खलु णिय-णिय-सत्त-भवा।
उज्जले कंतिमाणे, जिण-विसिट्ठाभा-संजुत्ते।।335।।

अर्थ–भव्य जीव जिनेन्द्र भगवान् की विशिष्ट आभा से संयुक्त उज्ज्वल कांतिमान् भामंडल में अपने–अपने सात भव देखते हैं।

देवदुंदुही कुव्वदि, हरिसादिरेगेण जिण-जयघोसं।
आमंतेदि हु भव्वा, सेयत्थं सुसमवसरणम्मि।।336।।

अर्थ–देवदुंदुभि हर्षातिरेक से जिनेन्द्र प्रभु की जयघोष करती है तथा श्रेय के लिए समवशरण में भव्यों को आमंत्रित करती है।

तित्थयर-जिणिंदोवरि, सुगंधिद-उक्किट्ठ-पुप्फविट्ठी हु।
देवेहिं परमभत्ति-रायेण करिज्जदि सहाए।।337।।

अर्थ–सभा में तीर्थंकर जिनेंद्र के ऊपर परम भक्ति के राग से देवों के द्वारा सुगंधित उत्कृष्ट पुष्पों की वृष्टि की जाती है।

जन्मातिशय

अइ-सुंदरो मणोण्णो, परम-रूववाणो तित्थयर-जिणो।
वियडि-विहीणो णिच्चं, सुणेह-भत्ति-उप्पादगो य।।338।।

अर्थ–तीर्थंकर जिनेन्द्र अतिसुंदर, मनोज्ञ, परम रूपवान्, विकृति विहीन और नित्य सुनेह भक्ति के उत्पादक होते हैं।

णव-सुगंधिद-पुप्फव्व, सुवासो जम्मादो तित्थयराण।
ओरालिय-सरीरम्मि, अणुवमो सुहकरो णियमेण।।339।।

अर्थ-तीर्थंकरों के औदारिक शरीर में जन्म से ही नियम से नव सुगंधित पुष्प के समान अनुपम, सुखकर सुगंधि होती है।

सेदो ण जणदि कयावि, लोयादिसाइ-तित्थयर-पुरिसस्स।
सरीरे णिस्सेदत्त-मदिसयो णादव्वो इत्थं।।340।।

अर्थ-लोकातिशायी तीर्थंकर पुरुष के शरीर में पसीना कदापि उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार यह नि:स्वेदत्व अतिशय जानना चाहिए।

तित्थयरो जम्मादो, दिवि-दिव्वाहारं गिह-चागंतं।
गहंते तहा ताणं, णिहाराभावो होदि सया।।341।।

अर्थ-तीर्थंकर जन्म से गृहत्याग करने तक स्वर्ग का दिव्याहार ग्रहण करते हैं तथा उनके सदा निहार का अभाव होता है।

परुस-पेसुण्ण-कडुगं, णिंद-वयणं णो तित्थयर-पुरिसा।
वदंति हिद-मिदप्पियं, जावज्जीवं जम्मदिसयो।।342।।

अर्थ-तीर्थंकर पुरुष कभी परुश (कठोर), पैशून्य, कटुक, निंद्य वचन नहीं बोलते। वे यावज्जीवन हित-मित-प्रिय वचन बोलते हैं। यह जन्म का अतिशय है।

तित्थयरा जम्मादो, अचिंत-अउल-बल-धारगा होंति हु।
तित्थयराण सुहबलं, पर-दुक्ख-कारणं ण कयाइ।।343।।

अर्थ-तीर्थंकर जन्म से अचिंत्य अतुल बल के धारक होते हैं। तीर्थंकरों का वह शुभ बल पर दु:ख का कारण कदापि नहीं होता।

तित्थयर-णाम-सुपयडि-धारगाण धवल-पय-वण्ण-रत्तं।
सत्तिग-गुण-परयेणं, अइ-वच्छल्ल-पहावेणं च।।344।।

अर्थ-सात्विक गुण के अतिशय और अति वात्सल्य के प्रभाव से तीर्थंकर

शुभ नाम प्रकृति के धारक तीर्थंकरों के दुग्ध वर्ण के समान धवल रक्त होता है।

अट्ठोत्तर-सहस्सं हु, सुह-लक्खण-जुत्ता होंति जिणिंदा।
णवसय-वंजणाइं च, अट्ठोत्तर-सयं सुलक्खणं।।345।।

अर्थ-जिनेन्द्र देव एक हजार आठ शुभ लक्षणों से युक्त होते हैं। नौ सौ व्यंजन और एक सौ आठ शुभ लक्षण होते हैं।

अक्विंकदू छत्त-मीण-गय-हय-उसह-सत्थिग-कामधेणू।
सायरो तुला माला, असि-पहुदी होंति लक्खणाणि।।346।।

अर्थ-सूर्य, चंद्र, छत्र, मीन, गज, अश्व, वृषभ, स्वास्तिक, कामधेनु, सागर, तुला, माला, तलवार आदि लक्षण होते हैं।

णयणाहिरामाणि तह सोहंति मसअ-तिल-लसुण-पहुदीणि।
पुढो पुढो अंगेसुं, वंजणाणि तित्थेस-देहे।।347।।

अर्थ-तीर्थंकर की देह में पृथक्-पृथक् अंगों में अति सुंदर मस्सा, तिल, लहसुन आदि व्यंजन सुशोभित होते हैं।

होज्ज समचउरस्संग-संठाणं हु तित्थयर-पुरिसाणं।
सुरम्म-जम्मादिसयो, आगरिसगं पुण्णरूवं च।।348।।

अर्थ-तीर्थंकर पुरुषों के आकर्षक, पुण्यरूप समचतुरस्र संस्थान होता है। यह सुरम्य जन्म अतिशय है।

वज्जस्स अत्थि-वेट्ठण-कीली अवि जिणवर-तित्थयराणं।
उक्किट्ठं वज्जरिसह-णाराय-संहणणं णेयं।।349।।

अर्थ-तीर्थंकर जिनों के वज्र की अस्थि, वज्र का वेष्टन व कीलियाँ भी वज्र की होती हैं। उनके यह उत्कृष्ट वज्र वृषभ नाराच संहनन जानना चाहिए।

केवलज्ञानातिशय

तित्थयर-जिणिंदस्स हु केवल-णाण-दह-अदिसया हवंति।
ताण णामाणि वि तहा, सुपुण्ण-णिमित्तं जीवाणं।।350।।

अर्थ-तीर्थंकर जिनेंन्द्र के केवलज्ञान के दस अतिशय होते हैं तथा उनके नाम भी जीवों के लिए पुण्य के निमित्त हैं।

सय-जोजण-खेत्तम्मि हु, होज्ज सुभिक्खं केवलि-पहावेण।
दुब्भिक्ख-ईदि-भीदी, तत्थ णो सहाइ माहप्पो।।351।।

अर्थ-केवली के प्रभाव से सौ योजन क्षेत्र में सुभिक्ष होता है। वहाँ दुर्भिक्ष ईति, भीति नहीं होती यह सभा (समवशरण) का माहात्म्य है।

णिम्मल-आयासतले, तित्थयर-केवली णो भूमीए।
पयडीए विहरंते, एरिसो जिणदिसयो णियमा।।352।।

अर्थ-तीर्थंकर केवली स्वभाव से निर्मल आकाश तल में विहार करते हैं, भूमि पर नहीं। ऐसा नियम से जिनेन्द्र प्रभु का अतिशय है।

समवसरणे विज्जंत-परमोरालिय-देह-जुत्त-जिणस्स।
आणणं चउदिसासुं, देक्खिज्जदि चदुराणणं तं।।353।।

अर्थ-समवशरण में विद्यमान परमौदारिक देह से युक्त जिनेन्द्र प्रभु का मुख चारों दिशाओं में देखा जाता है इसीलिए वे चतुरानन कहे जाते हैं।

सय-जोजण-भूमीए, चउसु णो संभवो कूरकम्माणि।
णो हिंसा अहिंसा हि, होज्ज जिणेणणुकंव-विट्टी।।354।।

अर्थ-सौ योजन की भूमि में चारों दिशाओं में क्रूरकर्म संभव नहीं है वहाँ हिंसा नहीं अहिंसा ही होती है। ऐसी जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा अनुकंपा वृष्टि होती है।

णो कयाइ उवसग्गो, माणुस-देवासुर-तिरिय-जीवेहि।
वा अण्ण-कारणेण वि, केवलणाण-सुप्पहावेण।।355।।

अर्थ–केवलज्ञान के सुप्रभाव से मनुष्य, देव, असुर, तिर्यंच जीवों के माध्यम या अन्य कारण से भी कभी उपसर्ग नहीं होता।

केवलि-जिणाणं हवदि, खइय-णाणं णाणावरण-खयादु।
सव्वाणं विज्जाणं, ईसरा हु जाणिज्जंति ते।।356।।

अर्थ–ज्ञानावरण के क्षय से केवलि जिनों के क्षायिक ज्ञान होता है। वे सभी विद्याओं के ईश्वर जाने जाते हैं।

परमोरालिय-देहे, ण वड्ढंति णह-केसा केवलीण।
गुरुमहिमा जाणेज्जा, सुपरमोरालिय-सरीरस्स।।357।।

अर्थ–केवलियों की परमौदारिक देह में नख केशों की वृद्धि नहीं होती। शुभ परमौदारिक देह की गुरु (महान्) महिमा जाननी चाहिए।

णो गहंते कयावि हु, कवलाहारं केवली जिणिंदा।
ते णोकम्माहारं, अणंतरं केवलणाणस्स।।358।।

अर्थ–केवली जिनेन्द्र कभी कवलाहार ग्रहण नहीं करते। वे केवलज्ञान के अनंतर नोकर्माहार ही करते हैं।

ण पम्ह-फंदणं कया, णो णिमिसणं हु केवलि-देवाणं।
णिण्णिमेसा य णासादिट्ठि-जुद-जिणा झाणट्ठिदा।।359।।

अर्थ–केवली जिनेन्द्र देवों के कभी भी पलक झपकना या आँखों का मूंदना नहीं होता। ध्यान में स्थिति जिनेन्द्र प्रभु निर्निमेष व नासा दृष्टि से युक्त होते हैं।

कयाइ परमोरालिय-सरीरस्स हु णो छाहिया होज्जा।
अच्छायाइत्तया हु, होंति तित्थयर-जिणवरिंदा।।360।।

अर्थ–परमौदारिक देह की कभी भी परछाई नहीं होती। तीर्थंकर जिन सदा छाया से रहित ही होते हैं।

देवकृतातिशय

जिणभत्तदेवेहिं च, किदा चउदस-अदिसया सुहा होंति।
तिहुवण-विम्हयकारग-मंगल्ला भव्व-जीवाणं।।361।।

अर्थ-जिनभक्त देवों द्वारा कृत भव्य जीवों के लिए मंगलकारी तीनों लोकों में आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शुभ चौदह अतिशय होते हैं।

मागध-जादि-देवेहि, परिणमिज्जदे जिणस्स दिव्वझुणी।
अट्ठदस-महाभासा-सत्तसय-लहुभासासुं तह।।362।।

अर्थ-श्री जिन की दिव्यध्वनि मागध जाति के देवों के द्वारा अट्ठारह महाभाषा व सात सौ लघु भाषाओं में परिणत की जाती है।

सव्व-जीवेसुं तदा, पवड्ढंति वच्छल्ल-मेत्ति-भावो।
मोत्तूण वइर-भावं, वट्टंति आणंदणेणं च।।363।।

अर्थ-उस समय सभी जीवों में वात्सल्य व मैत्री भाव होता है और सभी बैर भाव को त्यागकर आनंद के साथ वर्तन करते हैं।

जत्थ तित्थयर-देवो, विरायदि भव्व-जीव-कल्लाणाय।
तत्थ झंझाइ-रहिदा, होंति विणिम्मला सव्व-दिसा।।364।।

अर्थ-जहाँ भव्य जीवों के कल्याण के लिए तीर्थंकर देव विराजित होते हैं वहाँ सभी दिशा आँधी, तूफान आदि से रहित विनिर्मल होती हैं।

मेहच्छादण-रहिदो, आयासो वि णिम्मलो होज्ज तदा।
धूम-उक्कावायाइ-विहीणो अदिसयो मणोण्णो।।365।।

अर्थ-उस समय आकाश भी मेघाच्छादन से रहित, धूम, उल्कापातादि से विहील विनिर्मल होता है यह मनोज्ञ अतिशय है।

रम्मेहि सव्व-रिऊण, पलास-कुसुम-फलेहिं समिद्धो य।
सो पदेसो णियमेण, जत्थ रीरंति केवलि-जिणा।।366।।

अर्थ-जहाँ केवली जिन विराजमान होते हैं वह प्रदेश नियम से सभी ऋतुओं के रम्य पत्र-पुष्प-फलों से समृद्ध होता है।

रयणमया अइ-सच्छा, होदि पुढवी आयंस-सारिच्छा।
देवेहिं किददिसयो, मणमोहगो सव्वजीवाण।।367।।

अर्थ-पृथ्वी रत्नमय व दर्पण के सदृश अति स्वच्छ होती है। देवों के द्वारा कृत यह अतिशय सभी जीवों के लिए मनमोहक है।

पणवीस-अहिय-बेसय-सहस्सपत्तंबुज-सुवण्णमयाणि।
रयंति विहार-काले, तित्थयर-चरणतले देवा।।368।।

अर्थ-विहार के समय देव तीर्थंकर प्रभु के चरण तल में दो सौ पच्चीस स्वर्णमय सहस्रदल कमलों की रचना करते हैं।

देवकिद-जयघोसेण, ओअग्गदे णिम्मलो आयासो।
जअक्कार-रुंटिदेण, सहिद-देवा अच्चंति जिणं।।369।।

अर्थ-देवकृत श्री जिन की जयघोष से संपूर्ण निर्मल आकाश व्याप्त हो जाता है। जयकारों के गुंजारवों से सहित देव, जिनेन्द्र प्रभु की अर्चना करते हैं।

सीयल-मंद-सुगंधिद-पवणं हु वायदे वाउकुमारो।
विक्किरियाए हु ताव-हारगं णंदप्पदायगं।।370।।

अर्थ-वायु कुमार देव विक्रिया से ताप हारक व आनंद प्रदायक शीतल, मंद, सुगंधित पवन चलाते हैं।

तंत-किलेस-दुहाणं भीदि-हारगा हु इंद-आणाए।
थणिद-कुमार-देवेहि, करिज्जदि गंधोदग-विट्टी।।371।।

अर्थ-इंद्र की आज्ञा से स्तनित कुमार देवों के द्वारा क्लांति, दु:ख व क्लेश हारक गंधोदक की वृष्टि की जाती है।

कंडग-रयकण-रहिदा, उवलप्पहुदि-विहीणा णियमेणं।
वसुंधरा होदि तत्थ, जत्थ हु पुण्णपुंज-जिणिंदा।।372।।

अर्थ-जहाँ पुण्यपुंज जिनेंद्र विराजमान होते हैं वहीं पृथ्वी नियम से कंटक, धूलकण से रहित व पत्थर आदि से भी विहीन होती है।

उप्पज्जदे सव्वदा, आणंदो परम-हरिसो जीवाण।
जत्थ तित्थयर-देवा, वीयरायी रीरंति तत्थ।।373।।

अर्थ-जहाँ वीतरागी तीर्थंकर देव विराजमान होते हैं वहाँ सभी जीवों के सर्वदा आनंद व परमहर्ष उत्पन्न होता है।

विहरंते जदा जिणा, भव्व-पुण्णेणं अण्ण-खेत्तेसुं।
अग्गे ताणं वंते, उज्जल-दिव्व-धम्मचक्काणि।।374।।

अर्थ-जब तीर्थंकर जिन भव्यों के पुण्य से अन्य क्षेत्रों में विहार करते हैं तब उनके आगे उज्ज्वल दिव्य धर्मचक्र चलते हैं।

जिणसमवसरणे होंति, पीढुवरि अट्ठ-मंगल-दव्वाइं।
वंति विहारयाले वि, जिणग्गे चामर-पहुदीइं।।375।।

अर्थ-जिन समवशरण में पीठ के ऊपर चंवर आदि अष्ट मंगल द्रव्य होते हैं। तथा विहार काल में भी जिनेन्द्र प्रभु के आगे चलते हैं।

केवलिजिण-तित्थयरा, होंति खलु अणंत-णाण-संजुत्ता।
तेहिं णाणावरणं, णासिदं रयणत्तय-बलेण।।376।।

अर्थ-तीर्थंकर केवली जिन अनंत ज्ञान से संयुक्त होते हैं। उन्होंने रत्नत्रय के बल से ज्ञानावरण नष्ट किया।

तित्थयर-जिणिंदेहिं, णासित्तु-णव-दंसणावरणिज्जं।
लहिदमणंतदंसणं, कहिज्जंति सव्वदंसि-जिणा।।377।।

अर्थ-तीर्थंकर जिनेंद्र के द्वारा नव दर्शनावरणी को नाशकर अनंत दर्शन प्राप्त किया गया जिससे वे सर्वदर्शी जिन कहे जाते हैं।

मोहणिज्ज-सव्व-पयडि-मिच्छत्ताइ-अट्ठवीसं खयित्तु।
पाविदं अणंतसुहं, तित्थयर-केवलि-जिणवरेहि।।378।।

अर्थ-तीर्थंकर केवली जिन के द्वारा मोहनीय कर्म की मिथ्यात्वादि सभी अट्ठाईस प्रकृतियों का क्षयकर अनंतसुख प्राप्त किया गया।

पंचायार-बलेणं, जिणेहिं अंतराय-सव्व-पयडी।
विणासिदा पुण लहिदा, पंचलद्धी अणंतसत्ती।।379।।

अर्थ-जिनेंद्र के द्वारा पंचाचार के बल से अंतराय कर्म की सर्व प्रकृतियों का नाश कर दिया गया पुन: पाँच लब्धि व अनंतशक्ति प्राप्त की।

मुख्य गणधर व संख्या

उसहदेवस्स पहाण-उसहसेणाइ-चउसीदि-गणेसा।
परियंदामि सव्वदा, चउणाण-बहु-इड्ढि-जुत्ता य।।380।।

अर्थ-श्री ऋषभदेव जिन के चार ज्ञान व बहु ऋद्धियों से युक्त मुख्य श्री वृषभसेनादि चौरासी गणधरों को सर्वदा प्रणाम करता हूँ।

अजियणाहस्स पहाण-केसरिसेणाइ-णउदि-गणहरा य।
मदि-सुदोहि-मणपज्जय-जुत्ता अच्चेमि तिजोगेहि।।381।।

अर्थ-श्री अजितनाथ जिन के मति, श्रुत, अवधि व मन:पर्यय ज्ञान से युक्त मुख्य केसरिसेनादि नब्बे गणधरों की तीनों योगों से अर्चना करता हूँ।

संभवणाहस्स मुक्ख-चारुदत्ताइ-पणुत्तरेगसया।
चउविह-गण-धारगा हु सग-भव-विच्छिदुं णमंसामि।।382।।

अर्थ-श्री संभवनाथ जिन के चार प्रकार के गण के धारक मुख्य चारुदत्तादि एक सौ पाँच गणधरों को अपने संसार के विच्छेद के लिए नमस्कार करता हूँ।

अहिणंदणणाहस्स हु, वज्जचमराइ-तियुत्तरेगसयं।
सव्व-गणहरा णाणी, कम्मक्खयिदुं ओणंदामि।।383।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ जिन के मुख्य वज्रचमरादि एकसौ तीन सभी ज्ञानी गणधरों को कर्म क्षय के लिए नमस्कार करता हूँ।

सुमदिणाहस्स णिच्चं, वज्जाइ-सोलसुत्तरेगसयं हु।
भवुदहि-तारुआ सव्व-गणहरा वंदे तिभत्तीइ।।384।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिन के भवोदधि तारक वज्रादि एक सौ सोलह सभी गणधरों को त्रिभक्ति सहित नित्य वंदन करता हूँ।

सिरि-पोम्मप्पहस्स सय, चमराइ-एयारसुत्तरसयं हु।
णिरभिस्संगा थुवेमि, इड्ढि-पडिअम्मिया गणेसा।।385।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिन के ऋद्धि से विभूषित निस्पृह चमरादि एकसौ ग्यारह गणधरों की सदा स्तुति करता हूँ।

सुपस्स-णाहस्स मुक्ख-बलदत्ताइ-पणाणउदी गणेसा।
पणिवयामि हु गणहरा, मोक्ख-पह-पणोल्लया सव्वा।।386।।

अर्थ-श्री सुपार्श्व जिन के समवशरण में मोक्ष पथ के प्रणेता मुख्य बलदत्तादि सभी पंचानवे (95) गणधरों को नमस्कार करता हूँ।

चंदप्पहस्स पहाण-वेदब्भाइ-तेणउदी गणेसा।
पण्णाण-धारगा सय, दुरिदं णस्सिदुं णमंसामि।।387।।

अर्थ-श्री चंद्रप्रभ भगवान के समवशरण में प्रकृष्ट ज्ञान के धारक मुख्य वैदर्भ आदि तेरानवे गणधरों को पापों के नाश के लिए सदा नमस्कार करता हूँ।

पुप्फदंत-देवस्स हु, णागाइ-अडसीदी गणहरा सय।
पावप्पणासिदुं हं, सण्णाण-परूवगा थुणदे।।388।।

अर्थ-श्री पुष्पदंत देव के समवशरण में सद्ज्ञान के प्ररूपक नागादि अठासी गणधरों की पापों के नाश के लिए मैं सदा स्तुति करता हूँ।

सीयलणाहस्स सया, कुंथु-आइ-सगसीदी गणहरा य।
अहिणंदामि अप्पस्स, सुद्धीइ णिवारिदुं दोत्थं।।389।।

अर्थ-श्री शीतलनाथ भगवान के कुन्थु आदि सतासी (87) गणधरों को दुर्गति के निवारण व आत्मा की शुद्धि के लिए सदा नमस्कार करता हूँ।

सेयंसणाहस्स सय, धम्माइ-सत्तहत्तरी गणहरा।
सव्वा हु मोक्खगामी, णिव्वाणं पाविदुं णमामि।।390।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ जिन के धर्म आदि सभी सतत्तर मोक्षगामी गणधरों को निर्वाण की प्राप्ति के लिए सदा नमस्कार करता हूँ।

सिरिवासुपुज्ज-जिणस्स, मंदिराइ-छसट्ठी सय गणेसा।
भवि-संबोहण-कत्तू, अप्प-बोहि-पाविदुं वंदे।।391।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य स्वामी के समवशरण में भव्यों को संबोधन के कर्त्ता मन्दिरादि छासठ (66) गणधरों को आत्मबोध की प्राप्ति के लिए सदा वंदन करता हूँ।

विमलणाहस्स जयाइ-पणवण्णा पण्णवंता गणेसा।
मुणिगणस्स इंदा हं, अप्प-सिद्धीए णमंसामि।।392।।

अर्थ-श्री विमलनाथ भगवान के समवशरण में प्रज्ञावंत, मुनिगणों के इंद्र जय आदि पचपन गणधरों को आत्मसिद्धि के लिए मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

अणंतणाहस्स सव्व-गणहरा अरिट्ठादी पण्णासा।
अणंतभवहारगा हु अणंतगुणपाविदुं णमामि।।393।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ जिनेद्र के समवशरण में अनंत संसार का हरण करने वाले अरिष्टादि सभी पचास गणधरों को निश्चय से अनंत गुणों की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।

धम्मपहुस्स पच्चग्ग-सेणाइ-गणणायगा तेदालं।
सव्व-पावक्खयेदुं, पुज्जेमि पच्चहं भत्तीइ।।394।।

अर्थ-श्री धर्मनाथ प्रभु के समवशरण में मुख्य सेनादि तैंतालीस (43) गणधरों को सर्व पापों के क्षय के लिए प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पूजता हूँ।

संतिणाहजिणिंदस्स, चक्कायुहाइ-गणहर-छत्तीसा।
सगप्प-रक्खिदुं थुवमि, चदुविह-संघ-संरक्खगा हु।।395।।

अर्थ-श्री शांतिनाथ जिनेंद्र के समवशरण में चतुर्विध संघ के संरक्षक चक्रायुध आदि छत्तीस गणधरों की अपनी आत्मा की रक्षा के लिए स्तुति करता हूँ।

कुंथुणाहस्स पहाण-सयंभु-आइ-पणतीसा गणेसा।
भव्वेहि वंदणीया, पणिवयामि पणम-गदि-लहिदुं।।396।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ भगवान के समवशरण में भव्यों के द्वारा वंदनीय प्रधान स्वयंभू आदि पैतीस गणधरों को पंचम गति की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।

अरणाहस्स पच्चग्ग-कुंभाइ-तीसं गणहरा-सव्वा।
पणविह-भव-हारगा हु, मोहारि-हंतुणो पणमामि।।397।।

अर्थ-मोहरूपी शत्रु का नाश करने वाले श्री अरनाथ भगवान् के समवशरण में मुख्य कुंभ आदि पाँच प्रकार के भव का नाश करने वाले सभी गणधरों को प्रणाम करता हूँ।

मल्लिणाहस्स णिच्चं, विसाहाइ-अट्ठवीसा गणेसा।
भावी सिद्धा वंदे, पावेदुं सग-सहावं हं।।398।।

अर्थ-श्री मल्लिनाथ भगवान के समवशरण में भविष्य में मोक्ष प्राप्त करने वाले विशाखा आदि अट्ठाईस गणधरों की स्व-स्वभाव की प्राप्ति के लिए मैं सदा वंदना करता हूँ।

मुणिसुव्वय-देवस्स हु, मल्लि-आदी अट्ठारस-गणेसा।
सुद्धप्प-रस-भोत्तू य, परिथुमि सगाणंदं-लहिदुं।।399।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रतनाथ देव के समवशरण में शुद्धात्म रस के भोक्ता मल्लि आदि अठारह गणधरों की स्व आनंद की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हूँ।

णमिणाह-तित्थेसस्स, सय सोमगाइ-सत्तरस-गणेसा।
पण-अह-भव-छिंदेदुं, परियंचामि तिय-भत्तीए।।400।।

अर्थ-श्री नमिनाथ तीर्थंकर के सोमक आदि सत्तरह गणधरों को पाँच प्रकार के पाप व पाँच प्रकार के संसार के छेद के लिए त्रिभक्ति से सदा पूजता हूँ।

णेमिणाह-देवस्स हु, वरदत्ताइ-एयारस-गणेसा।
सोहिदुं सगप्पं हं, परियंदामि भत्ति-रायेण।।401।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ देव के वरदत्त आदि ग्यारह गणधरों की निजात्मा के शोधन के लिए मैं भक्ति के अनुराग से स्तुति करता हूँ।

कमठोवसग्ग-विजेदु-पासणाहस्स सयंभू आदी हु।
दसा गणहरा सव्वा, अप्पगुणा पप्पोदुं थुणमि।।402।।

अर्थ-कमठोपसर्ग विजेता श्री पार्श्वनाथ स्वामी के सभी स्वयंभू आदि दस गणधरों की मैं आत्मगुणों की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हूँ।

संपइ सासण-णायग महावीरस्स इंदभूदि-आदी।
एयारसा गणहरा, अभिवंदामि हु तिसंझाए।।403।।

अर्थ-वर्तमान शासन नायक श्री महावीर भगवान के इंद्रभूति आदि ग्यारह गणधरों का तीनों संध्याकाल में अभिवंदन करता हूँ।

चौंसठ ऋद्धि निर्देश

जहाजोग्गं चदुसट्ठि-रिद्धि-संजुत्ता गणहरा सव्वा।
ताणं रिद्धि-सरूवं, वोच्छामि संखेवेणं हं।।404।।

अर्थ-सभी गणधर यथायोग्य चौंसठ ऋद्धि से संयुक्त होते हैं। उन ऋद्धियों के स्वरूप को मैं संक्षेप से कहता हूँ।

बुद्धि-विकिरिया चारण-तव-बलोसहि-रस-अक्खीण-रिद्धी।
अट्ठारस-एयारस-णव-सत्त-ति-अट्ठ-सड-दुविहा।।405।।

अर्थ-बुद्धि, विक्रिया, चारण, तप, बल, औषधि, रस व अक्षीण ऋद्धि ये 8 प्रकार की हैं। ये क्रमशः अट्ठारह, ग्यारह, नौ, सात, तीन, आठ, छः व दो प्रकार की हैं।

मज्जादाए य दव्व-खेत्त-काल-भावाणं-मुत्ताइं।
जं पच्चक्खं णाणं, जाणादे तं ओहिणाणंति।।406।।

अर्थ–जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से मूर्त्तिक पदार्थों को जानता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान अवधिज्ञान है।

मज्जादाए य दव्व-खेत्त-काल-भावाण जाणदे णं।
मणस्स सुहसुहभावा, तं मणपज्जवं पच्चक्खं।।407।।

अर्थ–जो द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की मर्यादा से मन के शुभ-अशुभ भावों को जानता है वह प्रत्यक्ष मनः पर्ययज्ञान है।

जं जिणिय मोहणिज्जं, णासिय णाणावरणाइ-तिघादिं।
उप्पज्जदि पच्चक्खं, केवलं तं केवलणाणं।।408।।

अर्थ–जो मोहनीय कर्म जीतकर ज्ञानावरणादि तीन घातिया नाशकर उत्पन्न होता है और केवल अर्थात् इंद्रियादिक की सहायता से रहित है वह केवलज्ञान है।

णोइंदिय-सुदणाणावरण-वीरियाण खओवसमेणं।
बीअ-पदं णादूणं, जाणेदि सव्वसुदं बीअं।।409।।

अर्थ–नोइंद्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जो बीज पद को जानकर सर्व श्रुत को जानती है वह बीज बुद्धि ऋद्धि है।

जह कोट्ठे बहुधण्णं, तह सगबुद्धीए बहुसुदणाणं।
जो धरदि तस्स बुद्धी, कोट्ठ-बुद्धी हु मुणेदव्वा।।410।।

अर्थ–जिस प्रकार कोष्ठ में बहुत धान्य होता है उसी प्रकार जो निज बुद्धि में बहुत श्रुतज्ञान धारण करता है उसकी बुद्धि निश्चय से कोष्ठ बुद्धि जाननी चाहिए।

पदाणुसारी बुद्धी, विसिट्ठं णाणं तिविहा णाणीहि।
अणुसारी पडिसारी, उहयसारी य मुणेदव्वा।।411।।

अर्थ–विशिष्ट ज्ञान को पदानुसारी बुद्धि कहते हैं। वह ज्ञानियों के द्वारा अनुसारी, प्रतिसारी व उभयसारी के भेद से तीन प्रकार की जाननी चाहिए।

णादूण सुदस्स एग-बीअपदं जाणदि उवरिम-गंथं।
जा अणुसारी बुद्धी, सा सव्वदा हु मुणेदव्वा।।412।।

अर्थ-जो श्रुत के एक बीज पद को जानकर उपरिम ग्रंथ को जानती है वह सर्वदा ही अनुसारी बुद्धि जाननी चाहिए।

णादूण सुदस्स एग-बीअपदं जाणदि हेट्ठिम-गंथं।
जा बुद्धी पडिसारी, सा सव्वदा हु मुणेदव्वा।।413।।

अर्थ-जो श्रुत के एक बीज पद को जानकर अधस्तन ग्रंथ को जानती है वह सर्वदा ही प्रतिसारी बुद्धि जाननी चाहिए।

गहित्ता सुदस्स एग-बीअपदं उवरिम-हेट्ठिम-गंथं।
गिण्हेदि य जुगवं जा, सा खलु उहयसारी बुद्धी।।414।।

अर्थ-जो श्रुत के एक बीज पद को ग्रहण कर उपरिम व अधस्तन ग्रंथ को युगपत् ग्रहण करती है वह निश्चय से उभयसारणी बुद्धि है।

सोदुक्कस्स-खेत्तादु, बहिसंखेज्ज-जोजणाण सद्दाणि।
सुणित्ता पडिमंतेज्ज, जं तं संभिण्ण-सोदित्तं।।415।।

अर्थ-जो श्रोत्र इंद्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजनों में उत्पन्न शब्दों को सुनकर उत्तर दे सकती है उसे संभिन्न श्रोतृत्व बुद्धि ऋद्धि कहते हैं।

जिब्भुक्कस्स-खेत्तादु, बहि संखेज्ज-जोजण-पदेसे जं।
ठिद-णाणा-रस-सादं, जाणदि तं दूर-सादित्तं।।416।।

अर्थ-जो जिह्वा इंद्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र में स्थित नाना रसों के स्वाद को जानती है वह दूर स्वादित्व ऋद्धि कहलाती है।

फासुक्कस्स-खेत्तादु, बहि संखेज्ज-जोजण-पदेसे जं।
ठिद-अट्ठविहप्फासं, जाणदि तं दूर-फासत्तं।।417।।

अर्थ-जो स्पर्शन इंद्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में स्थित आठ प्रकार के स्पर्श को जानती है वह दूरस्पर्शत्व ऋद्धि है।

घाणुक्कस्स-खेत्तादु, बहि संखेज्ज-जोजण-पदेसे जं।
जादं बहुविह-गंधं, जिंघदि तं दूरघाणत्तं।।418।।

अर्थ-जो घ्राणेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में उत्पन्न बहुत प्रकार की गंध को सूंघ लेती है वह दूरघ्राणत्व ऋद्धि है।

सोदुक्कस्स-खेत्तादु, बहि संखेज्ज-जोजण-पदेसे जं।
सुणदि जाद-सद्दाइं, तं भणिदं दूर-सण्णत्तं।।419।।

अर्थ-जो श्रोत्रेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में उत्पन्न शब्दों को सुन लेती है वह दूर श्रवणत्व ऋद्धि कही गई है।

चक्खुक्कस्स-खेत्ताइ, बहि संखेज्ज-जोजण-पदेसे जं।
अणेगविह-दव्वाइं, पस्सेदि दूर-दरिसिणं तं।।420।।

अर्थ-जो चक्षु इंद्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में अनेक प्रकार के द्रव्यों को देखती है वह दूर-दर्शित्व ऋद्धि कही गई है।

महाविज्जाण पणसय-देवा सत्तसया खुल्ल-विज्जाण।
पढणम्मि दसपुव्वम्मि, आणं मग्गंति आवित्ता।।421।।

संजमी णो देवंति, जे ते अभिण्णदसपुव्वी णेया।
ताण रिसीणं बुद्धी, दसपुव्वी सम्माइट्ठीहि।।422।।

अर्थ-दस पूर्व के पढ़ने पर महाविद्याओं के पाँच सौ व क्षुद्र विद्याओं के सात सौ देव आकर आज्ञा माँगते हैं किन्तु जो संयमी उन्हें आज्ञा नहीं देते वे अभिन्नदसपूर्वी कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टियों के द्वारा उन ऋद्धियों की बुद्धि दसपूर्वी जाननी चाहिए।

संपुण्णागम-णादू सुदकेवली चउदस-पुव्व-सहिदा।
जे ताणं खलु रिद्धी, चउदसपुव्वी बुद्धी जाण।।423।।

अर्थ-जो संपूर्ण आगम के ज्ञाता हैं, चौदह पूर्व से सहित श्रुतकेवली हैं उनके निश्चय से चौदहपूर्वी बुद्धि ऋद्धि जानो।

णह-भउम-अंग-सरेहि, वंजण-लक्खण-चिण्ह-सिवणेहिं च।
अट्ठंग-णिमित्त-णादू, जे ताण णइमित्तिगिड्ढी हु।।424।।

अर्थ-नभ, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, चिह्न और स्वप्न इन अष्टांग निमित्त के जो ज्ञाता हैं उनके नैमित्तिक ऋद्धि है।

सत्थज्झयणेण विणा, संपुण्ण-सुदं जाणदि णिरूवेदि।
तस्स बुद्धी हु पण्णा-समण-रिद्धी हु मुणेदव्वा।।425।।

अर्थ-शास्त्र अध्ययन के बिना ही जो संपूर्ण श्रुत को जानता है उसका नियम से निरूपण करता है उसकी बुद्धि निश्चय से प्रज्ञा श्रमण ऋद्धि जाननी चाहिए।

पण्णा बुद्धी चदुहा, अणुपत्तिगी पारिणामिगी तहा।
वइणइगी कम्मजा हु, सव्वण्हु-जिणेण णिद्दिट्ठा।।426।।

अर्थ-औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी और कर्मजा ये चार प्रकार की प्रज्ञा बुद्धि सर्वज्ञ जिन के द्वारा निर्दिष्ट की गई है।

अउपत्तिगी बुद्धी य, पुव्वभवम्मि सुदविणयेण जादा।
पारिणामगी बुद्धी, सग-सग-जादि-विसेसम्मि खलु।।427।।

वइणइगी बुद्धी तह, बारसंगागम-जोग्ग-विणयेणं।
उवदेसेण विणा तव-विसेसेण कम्मजा जादा।।428।।

अर्थ-पूर्व भव में श्रुत की विनय से उत्पन्न बुद्धि औत्पत्तिकी है और अपनी-अपनी जाति विशेष में उत्पन्न बुद्धि पारिणामिकी है। द्वादशांग आगम की योग्य विनय से उत्पन्न बुद्धि वैनयिकी तथा उपदेश के बिना तप विशेष से उत्पन्न हुई बुद्धि कर्मजा प्रज्ञाश्रमण-ऋद्धि है।

सण्णाणं संवड्ढदि, तवो तहा विणा गुरुवदेसेणं।
कम्माण उवसमेणं, सा पत्तेय-बुद्धी णेया।।429।।

अर्थ-गुरु के उपदेश के बिना ही कर्मों के उपशम से सम्यग्ज्ञान तथा तप संवर्द्धित होता है, वह प्रत्येक बुद्धि जाननी चाहिए।

जाइ रिद्धीइ करेज्ज, णिरसणं विपक्खस्स अइवादेहि।
परछिड्डाणि घत्तेज्ज, सा वादित्त-बुद्धी णेया।।430।।

अर्थ-जिस ऋद्धि से अति वाद के द्वारा विपक्ष का निरसन किया जाता है व परछिद्र अर्थात् दोष ढूंढे जाते हैं वह वादित्व बुद्धि जाननी चाहिए।

अणिमा महिमा लघिमा, गरिमा ईसत्त-वसित्त-पत्तीउ।
पाकम्म-कामरूवा, अप्पदिघादंतद्धाणा य।।431।।

रिसीण तव-विसेसेण, इड्ढि-विकिरिया अणेय-भेय-जुदा।
हवेदि सहजदाए य, इड्ढि-जुद-संजदा पणमामि।।432।।

अर्थ-ऋषियों के तप विशेष से अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशत्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य, कामरूप, अप्रतिघात और अन्तर्धान इस प्रकार अनेक भेदों से युक्त सहजता से विक्रिया ऋद्धि होती है। इन ऋद्धि युक्त संयतों को मैं प्रणाम करता हूँ।

करेदुं सगसरीरं, अणुव्व सक्का जाए सत्तीए।
ताण समणाण णेया, अणिमा-इड्ढी हु गुणणामा।।433।।

अर्थ-जिस शक्ति से श्रमण निज देह को अणु के समान करने में समर्थ हैं उन श्रमणों के सार्थक नाम वाली अणिमा ऋद्धि जाननी चाहिए।

करेदुं सगसरीरं, मेरुव्व समत्था जाइ सत्तीइ।
ताण समणाण णेया, महिमा-इड्ढी हु अणिउज्झा।।434।।

अर्थ-जिस शक्ति से श्रमण निज देह को मेरु के समान बड़ा करने में समर्थ हैं उन श्रमणों के वह शुभ नाम वाली महिमा ऋद्धि जाननी चाहिए।

जाइ सत्तीइ जोगी, अइलहुं कुव्विदुं अक्कतूलं व।
समत्था णिय-सरीरं, ताण रिसीण लहिमा-इड्ढी।।435।।

अर्थ-जिस शक्ति से योगी अपने शरीर को अर्कतूल के समान अतिलघु करने में समर्थ हैं उन ऋषियों के वह लघिमा ऋद्धि होती है।

जाइ सत्तीए मुणी, अइगुरुं कुव्विदुं अयस-पिंडोव्व।
समत्था णिय-सरीरं, ताण रिसीण गरिमा-इड्ढी।।436।।

अर्थ-जिस शक्ति से मुनि निज शरीर को लोह पिंड के समान अति गुरु अर्थात् बहुत भारी करने में समर्थ होते हैं उन ऋषियों के वह गरिमा ऋद्धि जाननी चाहिए।

भूमीए ठावंता, जोदिस-विमाणं फासिदुं सक्का।
जाइ सत्तीइ समणा, सा पत्ति-इड्ढी णादव्वा।।437।।

अर्थ-जिस शक्ति से श्रमण भूमि पर स्थित रहते हुए ज्योतिष विमानों को स्पर्श करने में समर्थ हैं वह शक्ति प्राप्ति ऋद्धि जाननी चाहिए।

भूमीए णीरं व य, णीरम्मि पुढवीव रिसी गच्छंति।
जाए सत्तीए सा, पाकम्म-इड्ढी णादव्वा।।438।।

अर्थ-जिस शक्ति से ऋषि भूमि पर जल के सदृश और जल पर पृथ्वी के सदृश गमन करते हैं वह शक्ति प्राकाम्य ऋद्धि जाननी चाहिए।

सव्वेसुं जीवेसुं, पहुत्तं पप्पोंति जाइ सत्तीइ।
सा ईसत्तं इड्ढी, णादव्वा ताण समणाणं।।439।।

अर्थ-जिस शक्ति से श्रमण सभी जीवों पर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं उन श्रमणों के वह ईशत्व ऋद्धि जाननी चाहिए।

जाए इड्ढि-बलेणं, हवंते जीव-समूहा वसम्मि हु।
सा हु वसित्तं इड्ढी, तवेण लहंति इमं समणा।।440।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से जीव-समूह वश में हो जाते हैं वह वशित्व ऋद्धि है। तप से श्रमण इसे प्राप्त करते हैं।

जाए इड्ढि-बलेणं, तरु-गिरि-आदीणंतरं पविसत्तु।
गच्छंते जोगी हा, अप्पडिघादि-इड्ढी णेया।।441।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से योगी वृक्ष, पर्वत आदि के अनंतर प्रवेश कर गमन करते हैं वह अप्रतिघाति ऋद्धि जाननी चाहिए।

सक्कंते अद्दिस्सं, करिदुं सदेहं जाइ सत्तीए।
अंतद्धाणा इड्ढी, सा णियमेणं मुणेदव्वा।।442।।

अर्थ–जिस शक्ति से श्रमण स्वदेह को अदृश्य करने में समर्थ होते हैं वह नियम से अंतर्धान ऋद्धि जाननी चाहिए।

जुगवं बहुरूवाइं, धरिदुं सक्कंति जाइ सत्तीए।
सा सुउज्जुयाराणं, कामरूवा-इड्ढी णेया।।443।।

अर्थ–जिस शक्ति से श्रमण युगपत् बहुत रूप धारण करने में समर्थ होते हैं वह सुसंयमियों की कामरूप ऋद्धि जाननी चाहिए।

आयासं गच्छेदुं, सक्कंति समणा जाइ सत्तीए।
आसीणो उट्ठिदो तु, णहगामिणी चारण-इड्ढी।।444।।

अर्थ–जिस शक्ति से श्रमण खड़े होकर या बैठकर आकाश में गमन करने में समर्थ होते हैं वह नभगामिनी चारण ऋद्धि है।

जलकाइय-घादेणं, विणा गच्छेज्जा समुद्दादीसुं।
जाए सत्तीए जल-चारण-इड्ढी मुणेदव्वा।।445।।

अर्थ–जिस शक्ति से श्रमण जलकायिक जीवों के घात के बिना समुद्र आदि पर (अर्थात् जल पर) गमन करते हैं वह जल-चारण ऋद्धि जाननी चाहिए।

अवहेडित्ता भूमिं, चउरंगुलं विणा कुडिल-जाणुं च।
जंघा-चारणा जाइ, सत्तीए गच्छंति गगणे।।446।।

अर्थ–जिस शक्ति से श्रमण चार अंगुल प्रमाण भूमि को छोड़कर और बिना घुटने मोड़े आकाश में गमन करते हैं वह जल-चारण ऋद्धि है।

घादिदूण जीवा णो, फल-पुप्फ-पत्ताण उवरि गच्छंति।
जाइ सत्तीइ जोगी, फल-पुप्फ-पत्त-चारणा सा।।447।।

अर्थ–जिस शक्ति से योगी जीवों का घात न करके फल, पुष्प, पत्र पर गमन करते हैं वह फल-पुष्प-पत्र चारण-ऋद्धि है।

घादिदूण जीवा णो, अग्गिसिहाए धूमे गच्छंते।
जाए सत्तीए सा, अग्गिधूमचारण-इड्ढी य।।448।।

अर्थ-जिस शक्ति से संयमी, जीवों का घात न करके अग्नि शिखा व धूम पर गमन करते हैं वह अग्नि धूम चारण ऋद्धि है।

जलकाइय-घादेणं, विणा मेह-धारा-उवरि वच्चंति।
जाइ सत्तीइ जोगी, मेहधारा चारणइड्ढी।।449।।

अर्थ-जिस शक्ति से योगी जलकायिक जीवों के घात के बिना मेघ-धारा के ऊपर गमन करते हैं वह निश्चय से मेघधारा चारण ऋद्धि है।

विणा जीवघादेणं, गच्छंति मक्कडासंताणोवरि।
जाए सत्तीए सा, तंतुचारणकिरिया इड्ढी।।450।।

अर्थ-जिस शक्ति से जीव घात के बिना मकड़ी के जाल पर ऋषि गमन करते हैं वह तंतुचारण क्रिया ऋद्धि है।

किरणा अवलंबित्ता, जोदिसाणं हु वच्चंते जोगी।
जाए सत्तीए सा, जोदि-चारण-किरिया इड्ढी।।451।।

अर्थ-जिस शक्ति से योगी ज्योतिष विमानों की किरणों का अवलंबन लेकर गमन करते हैं वह निश्चय से ज्योतिष चारण क्रिया ऋद्धि है।

पवण-पदेस-पंतीसु, गच्छंति मुणिणो जाइ सत्तीए।
मारुदचारणइड्ढी, सा णाणीहिं मुणेदव्वा।।452।।

अर्थ-जिस शक्ति से मुनि वायु के प्रदेश की पंक्तियों पर गमन करते हैं वह ज्ञानियों के द्वारा मारुत् चारण ऋद्धि जाननी चाहिए।

जे णिग्गंथ-तवस्सी, कुव्वंते परम-विरत्त-भावेहि।
महातवं ते लहंति, तव-रिद्धिं णमो णमो ताण।।453।।

अर्थ-जो निर्ग्रंथ तपस्वी परम विरक्त भावों से महातप करते हैं वे तप ऋद्धि प्राप्त करते हैं। उनके लिए नमस्कार हो नमस्कार हो।

तवइड्ढी सत्तविहा, उग्ग-दित्त-तत्त-महा-घोर-तवा।
घोर-परक्कम-इड्ढी, तह अघोरबंभचारित्तं।।454।।

अर्थ-तप ऋद्धि सात प्रकार की है। उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप, घोरतप, घोरपराक्रम तप तथा अघोरब्रह्मचारित्व ऋद्धि।

उग्गोग्ग-अवट्ठिदाण, भेदादु दुविहा उग्ग-तव-इड्ढी।
दिक्खोववासादो हु, एगेगुववाणं वड्ढित्तु।।455।।

उग्गोग्गतवा इड्ढी, णिव्वहणं मरणपेरंतं जाण।
दिक्खोववासादो य, एगेगदिणंतरेण तहा।।456।।
करंतो छट्ठट्ठाइ-उववासं वड्ढंतो कुव्वंते।
ण जादि हेट्ठं कयावि, अवट्ठिदोग्ग-तव-इड्ढी सा।।457।।

अर्थ-उग्रोग्र तप व अवस्थित उग्र तप के भेद से उग्र तप ऋद्धि दो प्रकार की है। दीक्षोपवास से एक-एक उपवास बढ़ाकर मरण पर्यंत निर्वहन करना उग्रोग्र तप ऋद्धि जानो। और दीक्षोपवास से एक-एक दिन के अंतर से उपवास करते हुए षष्ट-अष्ट आदि उपवास बढ़ाते हुए उपवास करते हैं और क्रम से कभी भी नीचे नहीं गिरते वह अवस्थित-उग्र-तप-ऋद्धि है।

देहकंती वड्ढेदि, आइच्चोव्व हु बहु-उववासेहिं।
जाए इड्ढि-बलेणं, णेया दित्त-तव-इड्ढी सा।।458।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से बहुत उपवासों के द्वारा देह की कांति सूर्य के समान वृद्धिंगत होती है वह दीप्त तप ऋद्धि जाननी चाहिए।

धादुसहिद-भुत्तण्णं, झिज्जेदि मलमुत्तादिरूवं णो।
परिणमदि जाइ बलेण, तत्त-तव-इड्ढी सा णेया।।459।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से खाया हुआ अन्न धातु सहित क्षीण हो जाता है, मलमूत्रादि रूप परिणमन नहीं होता वह तप्त तप ऋद्धि जाननी चाहिए।

जाए इड्ढि-बलेणं, महोववासं कुव्वंते जोगी।
महातवा इड्ढी सा, मुणेदव्वा सण्णाणीहिं।।460।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के बल से योगी महान् उपवास करते हैं वह सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा महातप ऋद्धि जाननी चाहिए।

जाए इड्ढि-बलेणं, रोयादिणा अइवेयणे कुणंति।
घोर-तवं अवि समणा, घोर-तव इड्ढी सा णेया।।461।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के बल से रोगादि के द्वारा अति वेदना होने पर भी श्रमण घोर तप करते हैं वह घोर तप ऋद्धि जाननी चाहिए।

जाइ इड्ढीइ तिलोय-संहारग-सत्ति-संजुदा जोगी।
सहसा-सोसिदु-मुहहिं, सक्का सा घोर-तव-इड्ढी।।462।।

अर्थ–जिस ऋद्धि से योगी तीनों लोकों को संहार करने की शक्ति से युक्त व अचानक संपूर्ण समुद्र को सुखाने में समर्थ होते हैं वह घोर-तप-ऋद्धि है।

जाए मुणि-खेत्ते णो, दुब्भिक्ख-कलह-जुद्ध-महामारी।
होज्जा तिण्णं पहुदी, सा अघोर-बंभचारित्ता।।463।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के बल से मुनि के क्षेत्र में दुर्भिक्ष, कलह, युद्ध, महामारी, चोरी आदि नहीं होती, वह अघोर ब्रह्मचारित्व ऋद्धि है।

जाए इड्ढि-बलेणं, पालंते बंभचेरं अखंडं।
विणस्सेदि दुस्सिमणं, सा अघोर-बंभचारित्ता।।464।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के बल से दु:स्वप्न नष्ट होता है व योगी अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व ऋद्धि है।

णिद्दोस-तवेण मुणी, मण-वय-काय-भेयजुद-बलइड्ढिं।
लहंते ताण अचिंत-फलं सया चिंतेज्ज भव्वा।।465।।

अर्थ–मुनि निर्दोष तप के द्वारा मन, वचन, काय भेद से युक्त बल ऋद्धि को प्राप्त करते हैं। भव्यों को सदा उनके अचिंत्य फल का चिंतन करना चाहिए।

अंतोमुहुत्तकाले, संपुण्ण-सुदं चिंतेदि जाणेदि।
जाए इड्ढि-बलेणं, सा मण-बल-इड्ढी जोगीण।।466।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से योगी अंतर्मुहूर्त काल में संपूर्ण श्रुत का चिंतन कर लेता है, उसे जान लेता है वह योगियों की मनबल ऋद्धि है।

समेण कंठेण विणा, उच्चारदि संपुण्ण-सुदं जाए।
अंतोमुहुत्तकाले, सा वयण-बला हु जोगीणं।।467।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से योगी बिना श्रम व कंठ के (अर्थात् कण्ठ से बिना बोले) संपूर्ण श्रुत का उच्चारण कर लेते हैं वह योगियों की वचन बल ऋद्धि है।

जाए इड्ढि-बलेणं, उक्खिविदुं झडत्ति लोयं सक्का।
कणिट्ठंगुलीइ रिसी, काय-बल-इड्ढी सा णेया।।468।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से ऋषिवर कनिष्ठा अंगुलि से तीन लोक को शीघ्र उठाने में समर्थ होते हैं वह काय बल ऋद्धि जाननी चाहिए।

आमरिस-खेल-जल्ला, मल-विड-सव्वोसही मुणेदव्वा।
मुह-दिट्ठि-णिव्विसा तह, अट्ठविहा ओसही रिद्धी।।469।।

अर्थ- औषधि ऋद्धि आठ प्रकार की जाननी चाहिए आमर्ष, क्ष्वेल, जल्ल, मल, विड, सर्वोषधि, मुखनिर्विष तथा दृष्टि निर्विष।

करादीण फासेणं, समीवदाए वा होंति णिरोयी।
जीवा जाए बलेण, आमरिस-ओसहि-इड्ढी सा।।470।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से हाथ आदि के स्पर्श या समीपता से जीव निरोगी होते हैं वह आमर्ष औषधि ऋद्धि है।

णस्संति जाइ बलेण, लाला-खेलादीहिं जोगीणं।
जीवाण सव्व-रोया, सा खलु खेलोसही इड्ढी।।471।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के बल से योगियों की लार, कफ आदि से जीवों के सर्व

रोग नष्ट हो जाते हैं वह निश्चय से क्ष्वेलौषधि ऋद्धि जाननी चाहिए।

सेयजणिद-देहमलं, जल्लं णेयं जाइ बलेण तेण।
णस्संति सव्व-रोया, जीवाणं जल्लोसही सा।।472।।

अर्थ-पसीने से उत्पन्न शरीर का मल-जल्ल जानना चाहिए। जिस ऋद्धि के बल से ऋषियों के उस जल्ल के द्वारा जीवों के सर्व रोग नष्ट हो जाते हैं वह जल्लौषधि ऋद्धि है।

सोत्त-णासा-दंतोट्ठ-जीहादि-मलं सुउज्जुयाराणं।
सव्व-रोया खयेदि हु, जाइ सा मलोसही-इड्ढी।।473।।

अर्थ-जिससे सुसंयमियों का श्रोत्र, नासिका, दाँत, ओष्ठ, जिह्वा आदि का मल सभी रोगों को क्षय करता है वह मलौषधि ऋद्धि है।

जाइ इड्ढि-पहावेण, हरंति तवस्सीण मुत्त-पुरीसा।
जीवाण सव्व-रोया, णेया विडोसहि-इड्ढी सा।।474।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के प्रभाव से तपस्वियों का मूत्र-विष्टा भी जीवों के सभी रोगों को हरते हैं वह विडौषधि ऋद्धि जाननी चाहिए।

मुणि-फासिद-जल-वाउ-रोम-णहादीणि वि वाही हरंति।
जाइ इड्ढि-पहावेण, सा खलु सव्वोसही-इड्ढी।।475।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि से स्पर्शित जल, वायु, रोम, नख आदि भी व्याधि हरते हैं वह निश्चय से सर्वौषधि ऋद्धि है।

मुणिवयणं सुणिदूणं, जीवा होंति सिग्घं रोयमुत्ता।
जाइ इड्ढि-पहावेण, सा हु वयण-णिव्विसा-इड्ढी।।476।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के वचन सुनकर जीव शीघ्र रोगमुक्त हो जाते हैं वह निश्चय से वचन निर्विष ऋद्धि है।

णिव्विसा तह णिरोयी, होंति मुणिस्स दिट्ठि-मेत्तेण णरा।
जाइ इड्ढि-पहावेण, सा हु दिट्ठि-णिव्विसा-इड्ढी।।477।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि की दृष्टि मात्र से मनुष्य निर्विष तथा निरोगी हो जाते हैं वह निश्चय से दृष्टि निर्विष ऋद्धि है।

छव्विहा रसा रिद्धी, अइतवेण लहंति महातवस्सी।
णेच्छंति भोयण-रसं, होंति तत्तो णिरीहा ते हु।।478।।

अर्थ–महातपस्वी अति तप से छः प्रकार की रस ऋद्धि प्राप्त करते हैं। वे भोजन-रस की इच्छा नहीं करते उससे निरीह ही होते हैं।

आसीविस-दिट्ठिविसा, खीरस्सवी महुस्सवी णियमेण।
अमियस्सवि-सप्पिस्सवि-रिद्धी रसा य मुणेदव्वा।।479।।

अर्थ–नियम से आशीविष, दृष्टिविष, क्षीरस्रवी, मधुस्रवी, अमृतस्रवी और सर्पिस्रवी ऋद्धि छः प्रकार की रस ऋद्धि जाननी चाहिए।

मरह एरिसे भणिदे, तवस्सिणा सहसा मरेदि जीवो।
जाइ इड्ढि-पहावेण, सा आसीविस-इड्ढी जाण।।480।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के प्रभाव से तपस्वी के द्वारा मर जाओ ऐसा कहने पर जीव अचानक मृत्यु को प्राप्त हो जाता है वह आशीविष ऋद्धि जानो।

मुणिस्स कोह-दिट्ठीइ, मरंति जीवा जाइ इड्ढि-बलेण।
सा दिट्ठि-विसा-इड्ढी, विणिम्मल-जिणागमे भणिदा।।481।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के बल से मुनि की क्रोध दृष्टि से जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं वह निर्मल जिनागम में दृष्टि विष ऋद्धि निर्दिष्ट की गई है।

मुणिवरस्स अंजलीइ, संठिदो सुक्को रुक्खाहारो वि।
देदि खीर-सादं सा, खीरस्सवी-इड्ढी जाए।।482।।

अर्थ–जिससे मुनिवर की अंजुलि में रखा हुआ शुष्क-रूक्ष आहार भी क्षीर का स्वाद देता है वह क्षीरस्रवी ऋद्धि है।

पाणिपत्ते संठिदो, रुक्खो-तसिआहारो अवि जाए।
देदि महुर-सादं सा, महुस्सवि-इड्ढी णादव्वा।।483।।

अर्थ–जिससे ऋषिवर के पाणि पात्र में रखा रूखा सूखा आहार भी मधुर स्वाद देता है वह मधुस्रवी ऋद्धि जाननी चाहिए।

मुणि-करयले संठिदो, रुक्खाहारो वि जाइ सत्तीए।
अमियरूवो होज्ज सा, अमियस्सवी इड्ढी णेया।।484।।

अर्थ–जिस शक्ति से मुनि के करतल (हाथ) में रखा हुआ रूखा आहार भी अमृत रूप हो जाता है वह अमृतस्रवी ऋद्धि जाननी चाहिए।

समणस्स अंजलीए, संठिदे-रुक्खाहारो वि जाए।
सप्पि-सादं देदि सा, सप्पिस्सवी इड्ढी णेया।।485।।

अर्थ–जिससे श्रमण की अंजुलि में रखा हुआ सूखा आहार भी घी का स्वाद देता है वह सर्पिस्रवी ऋद्धि जाननी चाहिए।

रस-रिद्धि-धारगाणं, दिव्व-वयणेण विणस्संति णियमा।
रोय-सोग-दुहादीणि, एरिसं-हु रिद्धि-माहप्पं।।486।।

अर्थ–रस ऋद्धि धारकों के दिव्य वचन से निश्चय से रोग, शोक, दु:ख आदि नियम से नष्ट होते हैं ऐसा ऋद्धि का माहात्म्य है।

अदिसय-तव-पहावेण, खेत्त-इड्ढी होज्ज रिसिवराणं च।
अक्खीण-महाणसिगा, अक्खीण-महालया दुविहा।।487।।

अर्थ–अतिशय तप के प्रभाव से ऋषिवरों के क्षेत्र ऋद्धि होती है। वह अक्षीण महानसिक व अक्षीण महालय के भेद से दो प्रकार की होती है।

जाइ इड्ढि-पहावेण, तद्दिणे पच्छा समणाहारस्स।
तहियं चक्कवट्टिस्स, भुंजणम्मि वि सयल-कडगम्मि।।488।।

लव-मेत्तं वि ण खयदे, भोयणं विम्हय-उप्पायगा सा।
अक्खीण-महाणसिगा, इड्ढी णियमा मुणेदव्वा।।489।।

अर्थ–जिस ऋद्धि के प्रभाव से श्रमण के आहार के पश्चात् उस दिन वहाँ चक्रवर्ती के संपूर्ण कटक के भोजन करने पर भी वह भोज्य सामग्री लव

मात्र भी नष्ट नहीं लेती है वह नियम से विस्मय उत्पन्न करने वाली अक्षीण महानसिक ऋद्धि जाननी चाहिए।

जाए समचउरंसे, चउ-धणु-पमाण खेत्तम्मि मंति सा।
असंखेज्ज-णर-तिरिया, अक्खीण-महालया-इड्ढी।।490।।

अर्थ-जिस ऋद्धि के प्रभाव से समचतुष्कोण चार धनुष प्रमाण वाले क्षेत्र में असंख्यात नर-तिर्यंच समा जाते हैं वह अक्षीण महालय ऋद्धि है।

विपुलमति व अवधिज्ञानियों की संख्या

अड्ढाइज्ज-सय-णूण-तेरससहस्साइं विउलमदी य।
णव-सहस्साणि ओही, समवसरणे उसहणाहस्स।।491।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ भगवान के समवशरण में ढाई सौ कम तेरह हजार अर्थात् 12750 विपुलमति और नौ हजार अवधिज्ञानी हुए।

पणसयपण्णासणूण-तेरस-सहस्साइं विउलमदी य।
चउणवदिसया ओही, अजियणाहस्स धम्मसहाइ।।492।।

अर्थ-श्री अजितनाथ जिन की धर्मसभा में पाँच सौ पचास कम तेरह हजार अर्थात् 12450 विपुलमति और नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी हुए।

अट्ठसयपण्णासूण तेरससहस्सा विउलमदी जाण।
ओही छणवदिसयाणि, संभवजिणिंद-समवसरणे।।493।।

अर्थ-श्री संभवनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में आठ सौ पचास कम तेरह हजार अर्थात् 12150 विपुलमति और नौ हजार छ सौ अवधिज्ञानी जानो।

तिसयपण्णासणूणा बावीससहस्सा तह विउलमदी।
अट्ठणवदि-सय-ओही, अहिणंदणणाहस्स सहाइ।।494।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ जिन की सभा में तीन सौ पचास कम बाईस हजार अर्थात् 21650 विपुल्मती तथा नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी हुए।

दससहस्साइं च चदु-सया विउलमदि-मणपज्जय-णाणी।
एयारस-सहस्साणि, ओही सुमदिणाह-सहाए।।495।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिन की सभा में दस हजार चार सौ (10,400) विपुलमती मन:पर्ययज्ञानी तथा ग्यारह हजार अवधिज्ञानी हुए।

दससहस्साणि तिसया, विउलमदी पउमजिण-समवसरणे।
दससहस्साणि ओही, णादव्वा भव्वजीवेहिं।।496।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र के समवशरण में दस हजार तीन सौ (10,300) विपुलमती तथा दस हजार अवधिज्ञानी हुए, ऐसा भव्य जीवों को जानना चाहिए।

अट्ठसयपण्णासूण-दससहस्साइं विउलमदी जाण।
णव-सहस्साणि ओही, समवसरणे सुपासजिणस्स।।497।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिन के समवशरण में आठ सौ पचास कम दस हजार अर्थात् 9150 विपुलमती व नौ हजार अवधिज्ञानी जानो।

अट्ठसहस्साणि विउल-मदी य मणपज्जयणाणी णेया।
बिसहस्स-ओहिणाणी, चंदप्पहस्स समवसरणे।।498।।

अर्थ-श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्र के समवशरण में आठ हजार (8000) विपुलमती मन:पर्ययज्ञानी तथा दो हजार अवधिज्ञानी जानने चाहिए।

पंचसत्तरि-सयाइं, विउलमदी सुविहिणाह-जिणिंदस्स।
बारसगुणिदाणि सत्त-सयाणि ओही धम्मसहाइ।।499।।

अर्थ-श्री सुविधिनाथ जिनेन्द्र की धर्मसभा में पचहत्तर सौ (7500) विपुलमती तथा बारह से गुणित सात सौ अर्थात् 8400 अवधिज्ञानी हुए।

पणसत्तरी सयाइं, विउलमदी सीयलणाह-सहाए।
बाहत्तरी सयाइं, ओही णाणी संविदव्वा।।500।।

अर्थ-श्री शीतलनाथ जिन की सभा में पचहत्तर सौ (75,00) विपुलमती तथा बहत्तर सौ (72,00) अवधिज्ञानी जानना चाहिए।

सडसहस्स-विउलमदी, तित्थयर-सेयंस-समवसरणे।
तहेव ओहि-णाणी वि, अच्चणीया सया भव्वेहि।।501।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के समवशरण में भव्यजीवों के द्वारा सदा अर्चनीय छ हजार विपुलमती तथा उतने ही अर्थात् 6000 अवधिज्ञानी हुए।

छसहस्सा विउलमदी, चदुपण्णास-सयाणि ओहि-णाणी।
भवि-पूजिद-वासुपुज्ज-समवसरणम्मि विआणेज्जा।।502।।

अर्थ-भव्यों के द्वारा पूजित श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र के समवशरण में छ हजार विपुलमती तथा चौवन सौ अवधिज्ञानी मुनि जानना चाहिए।

पंचावण्ण-सयाइं, विमलजिण-समवसरणे विउलमदी।
अडयालीस-सयाइं, ओही पाव-मल-हारगस्स।।503।।

अर्थ-पाप मल के हारक श्री विमलनाथ जिन के समवशरण में पचपन सौ विपुलमती व अड़तालीस सौ अवधिज्ञानी हुए।

पंचसहस्साणि विउल-मदी अणंतणाह-समवसरणम्मि।
तेआलीस-सयाइं, अणंत-भव-णासगा ओही।।504।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ जिन के समवशरण में पाँच हजार विपुलमती व तैतालीस सौ (43,00) अनंत संसार का नाश करने वाले अवधिज्ञानी हुए।

पणदाल-सयाणि विउल-मदी समवसरणे धम्मणाहस्स।
छत्तीस-सया ओही, कारगस्स सधम्मपत्तीइ।।505।।

अर्थ-स्वधर्म (स्वभाव) की प्राप्ति के कारक श्री धर्मनाथ जिन के समवशरण में पैतालीस सौ (45,00) विपुलमती व छत्तीस सौ अवधिज्ञानी हुए।

चदुसहस्साइं विउल-मदी धम्मसहाइ संतिणाहस्स।
तिसहस्साइं ओही, सदोसाण संति-कारगस्स।।506।।

अर्थ-स्व दोषों की शांति के कारक श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र की धर्मसभा में चार हजार (4000) विपुलमती व तीन हजार (3000) अवधिज्ञानी हुए।

तिसयपण्णासहियाणि, तिसहस्साइं विउल-मदी णेया।
अड्ढाइज्ज-सहस्सा, ओही कुंथुजिणस्स सहाइ।।507।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ जिनेन्द्र की सभा में तीन हजार तीन सौ पचास (3350) विपुलमती व ढ़ाई हजार (2500) अवधिज्ञानी मुनि जानना चाहिए।

णवसय-पणदाल-णूण-तिसहस्साइं विउलमदी जाणह।
अट्ठावीस-सयाइं, ओही अरजिण-समवसरणे।।508।।

अर्थ-श्री अरनाथ जिन के समवशरण में नौ सौ पैंतालीस कम तीन हजार अर्थात् 2055 विपुलमती तथा अट्ठाईस सौ (28,00) अवधिज्ञानी जानना चाहिए।

बेसय-पण्णास णूण-बेसहस्साणि विउलमदी णाणी।
बावीस-सया ओही, मल्लिणाहस्स समवसरणे।।509।।

अर्थ-श्री मल्लिनाथ जिन के समवशरण में दो सौ पचास कम दो हजार अर्थात् 1750 विपुलमती तथा बाईस सौ अवधिज्ञानी हुए।

पणदस-सया विउलमदि-णाणी य मुणिसुव्वद-तित्थयरस्स।
अट्ठारस-सय-ओही, भवि-सेय-हेदु-समवसरणे।।510।।

अर्थ-भव्यों के कल्याण में निमित्त श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के समवशरण में पंद्रहसौ विपुलमती ज्ञानी तथा अट्ठारह सौ अवधिज्ञानी हुए।

पण्णासुत्तर-बारस-सयाइं विउलमदी णमिणाहस्स।
सोलस-सयाणि ओही पुण्ण-वड्ढगा समवसरणे।।511।।

अर्थ-पुण्यवर्द्धक श्री नमिनाथ जिन के समवशरण में बारह सौ पचास (1250) विपुलमती तथा सोलह सौ अवधिज्ञानी हुए।

विउलमदी णवसयाणि, हरिवंस-तिलग-सिरिणेमिणाहस्स।
पणदस-सयाणि ओही, णीलमणि-ठिद-समवसरणम्मि।।512।।

अर्थ-हरिवंश के तिलक श्री नेमिनाथ जिन के नीलमणि पर स्थित समवशरण में नौ सौ विपुलमती तथा पंद्रह सौ (1500) अवधिज्ञानी हुए।

पण्णासहिय-सत्त-सय-विउलमदी जिणिंदपासणाहस्स।
चउदस-सयाणि ओही, तिलोयणाह-समवसरणम्मि।।513।।

अर्थ-त्रिलोकीनाथ श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में सात सौ पचास विपुलमती तथा चौदह सौ (1400) अवधिज्ञानी हुए।

पंच-सयाणि विउलमदि-णाणी महावीर-वड्ढमाणस्स।
तेरस-सयाणि ओही, जिण-सासण-णायग-सहाए।।514।।

अर्थ-जिनशासन नायक श्री वर्धमान महावीर स्वामी की सभा में पाँच सौ विपुलमती मन:पर्ययज्ञानी तथा तेरह सौ अवधिज्ञानी हुए।

पूर्वधारी व शिक्षकों की संख्या

बेसय-पण्णास-णूण-पंचसहस्स-पुव्वधरा उसहस्स।
अट्ठसयपण्णासूण-पणसहस्स-सिक्खगा सहाइ।।515।।

अर्थ-श्री वृषभनाथ जिन की सभा में दो सौ पचास कम पाँच हजार अर्थात् 4750 पूर्वधर तथा आठ सौ पचास कम पाँच हजार अर्थात् 4150 शिक्षक मुनि हुए।

बेसय-पण्णास-णूण-चदुसहस्स-पुव्वधरा य अजियस्स।
गवीस-सहस्साइं, सडसया सिक्खगा सहाए।।516।।

अर्थ-श्री अजितनाथ जिन की सभा में दो सौ पचास कम चार हजार अर्थात् तीन हजार सात सौ पचास (3750) पूर्वधर तथा इक्कीस हजार छ: सौ (21,600) शिक्षक मुनि हुए।

पण्णासुत्तरिगवीस-सयाणि पुव्वधरा धम्म-सहाए।
लक्ख-मुणतीस-सहस्स-तिसया सिक्खगा संभवस्स।।517।।

अर्थ-श्री संभवनाथ जिन की धर्म सभा में इक्कीस सौ पचास (2150) पूर्वधर तथा एक लाख उनतीस हजार तीन सौ (1,29,300) शिक्षक मुनि हुए।

पणवीस-सयाइं तह, पुव्वधरा सहाइ अहिणंदणस्स।
सिक्खगा बेलक्खाणि, पण्णासहिय-तीस-सहस्सा।।518।।

अर्थ-श्री अभिनंदन जिन की धर्म सभा में पच्चीस सौ पूर्वधर तथा दो लाख तीस हजार पचास (2,30,050) शिक्षक मुनि हुए।

चउवीस-सयाणि पुव्व-धरा सुमदि-सहाइ सिक्खग-मुणी य।
बेलक्खाणि चउवण्ण-सहस्सा पण्णाहियतिसया।।519।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में चौबीस सौ (2400) पूर्वधर तथा दो लाख चौवन हजार तीन सौ पचास (2,54,350) शिक्षक मुनि हुए।

तेवीस-सयाणि जाण, पुव्वधरा सिरि पउमजिण-सहाए।
सिक्खगा बेलक्खाणि, ऊणत्तरि-सहस्साइं तह।।520।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की सभा में तेईस सौ (2300) पूर्वधर तथा दो लाख उनहत्तर हजार (2,69,000) शिक्षक मुनि जानो।

तीसुत्तर-वीससया, पुव्वधरा सिक्खगा तेलक्खाणि।
सुपाससस्स पण्णवण्ण-सहस्स-असीदि-णूणाइं च।।521।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिन की धर्मसभा में दो हजार तीस (2030) पूर्वधर और तीन लाख में पचपन हजार अस्सी कम अर्थात् दो लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस (2,44,920) शिक्षक मुनि हुए।

चदु-सहस्स-पुव्वधरा उणणवदि-सहस्स-छसय-णूणाइं।
तिलक्खाइं सिक्खगा, समवसरणे चंदप्पहस्स।।522।।

अर्थ-श्री चंद्रप्रभ जिन के समवशरण में चार हजार पूर्वधर तथा तीन लाख में नवासी हजार छः सौ कम अर्थात् दो लाख दस हजार चार सौ (2,10,400) शिक्षक मुनि हुए।

पणदस-सय-पुव्वधरा, चउचत्ता-सहस्स-पणसय-णूणा।
बेलक्खाणि सिक्खगा समवसरणे सुविहिणाहस्स।।523।।

अर्थ–श्री सुविधिनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में पंद्रह सौ (1500) पूर्वधर तथा दो लाख में चवालीस हजार पाँच सौ कम अर्थात् एक लाख पचपन हजार पाँच सौ (1,55,500) शिक्षक मुनि हुए।

चउदससय-पुव्वधरा, अट्ठसय-णूण-सट्ठि-सहस्साइं।
सिक्खगा समवसरणे, तित्थयर-सीयल-जिणिंदस्स।।524।।

अर्थ–तीर्थंकर श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में चौदह सौ (1400) पूर्वधर तथा साठ हजार में आठ सौ कम अर्थात् उनसठ हजार दो सौ (59,200) शिक्षक मुनि हुए।

तेरस-सय-पुव्वधरा, अडदालीस-सहस्सा बेसयाणि।
सिक्खगा धम्मसहाइ, सेयंसणाह-जिणदेवस्स।।525।।

अर्थ–श्री श्रेयांसनाथ जिनदेव की धर्मसभा में तेरह सौ (1300) पूर्वधर तथा अड़तालीस हजार दो सौ (48,200) शिक्षक मुनि हुए।

बारस-सय-पुव्वधरा, उणदालीस-सहस्सइं बेसयाइं।
वासुपुज्जस्स य धम्म-सहाइ सिक्खगा णादव्वा।।526।।

अर्थ–श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की धर्मसभा में बारह सौ (1200) पूर्वधर तथा उनतालीस हजार दो सौ (39200) शिक्षक मुनि जानने चाहिए।

एयारस-सयाइं च, पुव्वधरा अट्ठतीससहस्साणि।
पणसयाइं सिक्खगा, विमलणाहस्स समवसरणे।।527।।

अर्थ–श्री विमलनाथ जिन के समवशरण में ग्यारह सौ (1100) पूर्वधर तथा अड़तीस हजार पाँच सौ (38,500) शिक्षक मुनि हुए।

सहस्सं पुव्वधरा य, उणदालसहस्साणि पंचसयाणि।
सिक्खगा समवसरणे, सिरिअणंतणाहजिणिंदस्स।।528।।

अर्थ–श्री अनंतनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में एक हजार पूर्वधर और उनतालीस हजार पाँच सौ (39,500) शिक्षक मुनि हुए।

पुव्वधरा णवसयाणि, सत्तसयसहिददालसहस्साइं।
सिक्खगा तित्थयरस्स, धम्मणाहस्स समवसरणे।।529।।

अर्थ–श्री धर्मनाथ तीर्थंकर के समवशरण में नौ सौ (900) पूर्वधर तथा चालीस हजार सात सौ शिक्षक मुनि हुए।

अट्ठसया-पुव्वधरा, गदाल-सहस्स-अट्ठसयसहिदा।
सिक्खगा य संतिणाह-जिणिंदस्स हु समवसरणम्मि।।530।।

अर्थ–श्री शांतिनाथ तीर्थंकर के समवशरण में निश्चय से आठ सौ पूर्वधर इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक मुनि थे।

सत्तसया पुव्वधरा, कुंथुजिण-धम्मसहाए सिक्खगा।
इगसयपण्णासुत्तर-तेदाली सहस्साइं तह।।531।।

अर्थ–श्री कुंथुनाथ जिन की धर्मसभा में सात सौ पूर्वधर तथा तेरालीस हजार एक सौ पचास (43,150) शिक्षक मुनि हुए।

दसुत्तर-छसया पुव्व-धरा सिक्खगा अरजिणस्स सहाइ।
पणतीस-सहस्साइं, पणतीसुत्तर-अट्ठसयाणि।।532।।

अर्थ–श्री अरहाथ जिन की सभा में छः सौ दस (610) पूर्वधर और पैतीस हजार आठ सौ पैतीस (35,835) शिक्षक मुनि हुए।

पंचसया पण्णासा, पुव्वधरा य सिरिमल्लिजिणिंदस्स।
उणतीस-सहस्साइं, सिक्खगा सुहसमवसरणम्मि।।533।।

अर्थ–श्री मल्लिनाथ जिनेंद्र के शुभ समवशरण में पाँच सौ पचास पूर्वधर और उनतीस हजार शिक्षक मुनि हुए।

पंचसया पुव्वधरा, सिक्खगा य इगवीस-सहस्साइं।
मुणिसुव्वद-तित्थेसर-समवसरणम्मि मुणेदव्वा।।534।।

अर्थ–श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के समवशरण में पाँच सौ (500) पूर्वधर और इक्कीस हजार (21,000) शिक्षक मुनि जानना चाहिए।

पण्णासहिय-चदुसया, पुव्वधरा तित्थेस-णमिणाहस्स।
बारस-सहस्स-छ-सया, सिक्खगा-धम्म-सहाइ।।535।।

अर्थ-श्री नमिनाथ तीर्थेश की धर्म सभा में चार सौ पचास पूर्वधर तथा बारह हजार छ सौ (12,600) शिक्षक मुनि हुए।

चदुसयाणि पुव्वधरा, बेसयणूण-बारससहस्साइं।
सिक्खगा विआणेज्जा, णेमिणाहस्स समवसरणे।।536।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ जिन के समवशरण में चार सौ पूर्वधर दो सौ कम बारह हजार अर्थात् ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक मुनि हुए।

जिणिंद-पासणाहस्स, समवसरणम्मि अड्ढुट्ठ-सयाइं।
पुव्वधरा सिक्खगा य, सयूण-एयारस-सहस्सा।।537।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ जिनेंद्र के समवशरण में तीन सौ पचास (350) पूर्वधर और सौ कम ग्यारह हजार अर्थात् दस हजार नौ सौ (10,900) शिक्षक मुनि हुए।

सम्मदि-वड्ढमाणस्स, तिसया पुव्वधरा समवसरणम्मि।
णवणउदि-सयाइं तह, सिक्खगा सया विआणेज्जा।।538।।

अर्थ-श्री सन्मति वर्धमान जिनेन्द्र के समवशरण में तीन सौ पूर्वधर तथा निन्यानवे सौ शिक्षक मुनि जानने चाहिए।

विक्रियाऋद्धिधारी एवं वादि मुनिराजों की संख्या

वीससहस्सा छसया, विकिरिया-इड्ढि-धारगा उसहस्स।
अड्ढाइज्ज-सय-णूण-तेरस-सहस्साइं वादी।।539।।

अर्थ-श्री वृषभनाथ स्वामी के समवशरण में बीस हजार छः सौ (20,600) विक्रिया ऋद्धिधारी तथा ढ़ाई सौ कम तेरह हजार अर्थात् बारह हजार सात सौ पचास (12,750) वादी मुनि हुए।

चदुसयसंजुदा बीस-सहस्स-वेगुव्विया समवसरणे।
अजियजिणस्स वादिणो, बारस सहस्सा चदु-सयाणि।।540।।

अर्थ-श्री अजितनाथ जिनेंद्र के समवशरण में बीस हजार चार सौ (20,400) विक्रिया ऋद्धिधारी तथा बारह हजार चार सौ (12,400) वादी मुनि हुए।

वेगुव्विया दोण्णिसय-णूण-वीससहस्सा धम्मसहाइ।
तित्थयर-संभवस्स य, वादिणो बारससहस्साणि।।541।।

अर्थ-श्री संभवनाथ तीर्थंकर की धर्मसभा में दो सौ कम बीस हजार अर्थात् (19,800) विक्रिया ऋद्धिधारी और बारह हजार (12,000) वादी मुनि हुए।

वेगुव्विया इगूण-वीससहस्साइं समवसरणम्मि।
वादिणो सहस्सं तह, अहिणंदणणाह-जिणिंदस्स।।542।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ जिनेंद्र के समवशरण में एक कम बीस हजार अर्थात् उन्नीस हजार (19,000) विक्रिया ऋद्धिधारी तथा एक हजार (1000) वादी मुनि हुए।

चदुसयजुद-अट्ठारस-सहस्साणि वेगुव्विया सुमदिस्स।
पंचसयपण्णासूण-एयारस-सहस्सा वादी।।543।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिन के समवशरण में अट्ठारह हजार चार सौ (18,400) विक्रियाऋद्धि धारी तथा पाँच सौ पचास कम ग्यारह हजार अर्थात् दस हजार चार सौ पचास (10,450) वादी मुनि हुए।

वेगुव्विया दोण्णिसय-णूण-सत्तारस-सहस्सा सहाइ।
चदुसयणूणाइं दस-सहस्साणि वादी पउमस्स।।544।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिनेंद्र की सभा में दो सौ कम सत्रह हजार अर्थात् सोलह हजार आठ सौ (16,800) विक्रिया ऋद्धि धारी तथा चार सौ कम दस हजार अर्थात् नौ हजार छः सौ (9600) वादी मुनि हुए।

तिण्णिसयुत्तर-पणदस-सहस्साणि वेगुव्विया सहाए।
अट्ठसहस्सा छसया, वादी सिरिसुपासणाहस्स।।545।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिन की सभा में पंद्रह हजार तीन सौ (15,300) विक्रिया ऋद्धिधारी तथा आठ हजार छः सौ (8,600) वादी मुनि हुए।

छस्सया वेगुव्विया, अट्ठम-चंदप्पह-समवसरणम्मि।
सत्तसहस्साणि तहा, वादी मुणिणो मुणेदव्वा।।546।।

अर्थ-अष्टम तीर्थंकर श्री चंद्रप्रभ जिन के समवशरण में छः सौ (600) विक्रियाऋद्धि धारी तथा सात हजार (7,000) वादी मुनि जानना चाहिए।

तेरस-सहस्साइं च, वेगुव्विया सुविहिणाह-सहाए।
चदुसयणूणाणि सत्त-सहस्साणि वादिणो णेया।।547।।

अर्थ-श्री सुविधिनाथ जिन की धर्म सभा में तेरह हजार (13,000) विक्रियाऋद्धि धारी और चार सौ कम सात हजार यानि छः हजार छः सौ (6600) वादी मुनि जानने चाहिए।

बारस-सहस्साइं च, विकिरिया-धारगा सीयल-सहाइ।
वादिणो तिण्णिसयूण-छस्सहस्साइं णादव्वा।।548।।

अर्थ-श्री शीतलनाथ जिन की सभा में बारह हजार विक्रियाऋद्धी धारी तथा तीन सौ कम छ हजार अर्थात् पाँच हजार सात सौ वादी (5,700) मुनि जानना चाहिए।

एयारस-सहस्साणि, वेगुव्विया सेयंसजिणिंदस्स।
पंचसहस्सा वादी, मुणिणो य सुह-समवसरणम्मि।।549।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र के शुभ समवशरण में ग्यारह हजार (11,000) विक्रिया ऋद्धीधारी तथा पाँच हजार (5000) वादी मुनि हुए।

जिणवर-वासुपुज्जस्स, वेगुव्विया तह दस-सहस्साइं।
दोण्णि-सयाहियाणि चदु-सहस्साइं वादी सहाइ।।550।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की सभा में दस हजार (10,000) विक्रिया

ऋद्धिधारी तथा दौ सो अधिक चार हजार अर्थात् चार हजार दौ सो (4,200) वादी मुनि हुए।

तित्थयर-विमलजिणस्स, विकिरिया-धारगा णवसहस्साणि।
छत्तीस-सया वादी, अट्ठभूमि-जुद-समवसरणे।।551।।

अर्थ-श्री विमलनाथ तीर्थंकर के अष्टभूमि युत समवशरण में नौ हजार (9,000) विक्रियाऋद्धिधारी तथा छत्तीस सौ (36,00) वादी मुनि हुए।

मोक्खपहणेउ-अणंत-जिणस्स वेगुव्वियट्ठसहस्साणि।
बत्तीस-सया वादी, सेय-हेदु-समवसरणम्मि य।।552।।

अर्थ-मोक्ष पथ के नेता श्री अनंतनाथ जिनेंद्र के कल्याण के हेतु समवशरण में आठ हजार (8000) विक्रियाऋद्धि धारी तथा बत्तीस सौ (3200) वादी मुनि हुए।

जिणधम्म-णायग-धम्म-जिणस्स वेगुव्विय-सत्तसहस्सा।
अट्ठावीस-सयाइं, तिगदिजीवजुद-समवसरणे।।553।।

अर्थ-जिनधर्म नायक श्री धर्मनाथ के तीनों गति के जीवों से युक्त समवशरण में सात हजार (7,000) विक्रियाऋद्धिधारी तथा अट्ठाईस सौ (28,00) वादी मुनि हुए।

अप्पसंतिकारग-सिरि-संतिणाहस्स य छस्सहस्साइं।
वेगुव्विया चउवीस-सयाइं वादिणो सहाए।।554।।

अर्थ-आत्मशांति के कारक श्री शांतिनाथ भगवान् की सभा में छः हजार (6,000) विक्रियाऋद्धिधारी तथा चौबीस सौ (24,00) वादी मुनि हुए।

तित्थेस-कुंथुजिणस्स, णवसयणूण-छसहस्साणि सहाइ।
वेगुव्विया वादिणो, दोण्णिसहस्साइं जदिणो य।।555।।

अर्थ-तीर्थेश श्री कुंथुनाथ जिनेंद्र की सभा में नौ सौ कम छः हजार अर्थात् पाँच हजार सौ (5100) विक्रियाऋद्धि धारी और दो हजार (2000) वादी मुनि हुए।

सत्तसयणूणा-पंच-सहस्स-वेगुव्विया अरणाहस्स।
वादी सोलस-सयाणि, संविदव्वा समवसरणम्मि।।556।।

अर्थ-श्री अरनाथ जिन के समवशरण में सात सौ कम पाँच हजार अर्थात् चार हजार तीन सौ (4300) विक्रियाऋद्धि धारी तथा सोलह सौ (1600) वादी मुनि जानना चाहिए।

इगसयणूणाणि तिण्णि-सहस्साणि वेगुव्विया सहाए।
चउदस-सयाणि वादी, तित्थयर-जिण-मल्लिणाहस्स।।557।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ जिन की सभा में सौ कम तीन हजार अर्थात् दो हजार नौ सौ (2900) विक्रियाऋद्धि धारी तथा चौदह सौ (1400) वादी मुनि हुए।

अट्ठसयणूणा तिण्णि-सहस्स-वेगुव्विया समवसरणे।
मुणिसुव्वद-जिणिंदस्स, वादिणो बारस-सयाइं च।।558।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्र के समवशरण में आठ सौ कम तीन हजार अर्थात् दो हजार दो सौ (2200) विक्रियाऋद्धि धारी और बारह सौ (1200) वादी मुनि हुए।

विकिरिया-धारगा तह, पंचदससयाणि जिणणमिणाहस्स।
एग-सहस्सा वादी मणि-रयण-खचिद-समवसरणे।।559।।

अर्थ-श्री नमिनाथ जिन के मणि एवं रत्न खचित समवशरण में पंद्रह सौ (1500)विक्रिया ऋद्धिधारी तथा एक हजार (1000) वादी मुनि हुए।

णेमिणाहस्स सहाइ, वेगुव्विया एयारस-सयाइं।
अट्ठसयाइं वादी, मुणिणो तहा समवसरणम्मि।।560।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ जिनेंद्र की धर्मसभा में ग्यारह सौ (11,00) विक्रिया ऋद्धिधारी तथा आठ सौ (800) वादी मुनि हुए।

एक्क-सहस्साइं तह, विकिरिया-धारगा समवसरणम्मि।
सडसया वादि-मुणिणो, तित्थयर-जिणपासणाहस्स।।561।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समवशरण में एक हजार विक्रिया ऋद्धिधारी तथा छः सौ (600) वादी मुनि हुए।

वेगुव्विया णवसया, वड्ढमाण-महावीर-जिणेसस्स।
वादिणो चदुसयाइं, समवसरणम्मि मुणेदव्वा।।562।।

अर्थ-श्री वर्धमान महावीर जिनेश के समवशरण में नौ सौ (900) विक्रियाऋद्धी धारी तथा चार सौ (400) वादी मुनि जानने चाहिए।

सामान्य केवली की संख्या

उसहस्स समवसरणे, वीस-सहस्स-सामण्ण-केवलिणो।
चउसीदी सहस्सा य, इत्थं सव्व-रिसि-गणा जाण।।563।।

अर्थ-श्री वृषभनाथ भगवान के समवशरण में बीस हजार (20,000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्व ऋषिगणों की संख्या चौरासी हजार (84,000) जानो।

चदुत्थकाल-तित्थयर-पढमस्स केवली वीस-सहस्सा।
एगलक्खा रिसिगणा, समवसरणे अजियणाहस्स।।564।।

अर्थ-चतुर्थकाल के प्रथम तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के समवशरण में बीस हजार (20,000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्व ऋषिगणों की संख्या एक लाख (1,00,000) जानो।

संभव णाहस्स धम्म-सहाइ पणदसहस्सा केवलिणो।
बेलक्खा रिसी गणा, भवि-कल्लाण-कारगा जाण।।565।।

अर्थ-श्री संभवनाथ भगवान की धर्म सभा में पंद्रह हजार सामान्य केवली हुए। इस प्रकार भव्य जीवों के लिए कल्याण कारक सर्व ऋषिगणों की संख्या दो लाख (2,00,000) जानो।

अभिणंदण-जिणिंदस्स, सव्व-केवलिणो सोलस-सहस्सा।
रिसी गणा तेलक्खा, अइ-विहव-पुण्ण-समवसरणे।।566।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्र के अत्यंत वैभव से युक्त समवशरण में सोलह हजार (16,000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या तीन लाख (3,00,000) जानों।

सुमदिजिण-समवसरणे, सामण्ण-केवलि-तेरस-सहस्सा।
तिलक्ख-वीससहस्सा, रिसिगणा सया पुज्जणीया।।567।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिन के समवशरण में तेरह हजार (13,000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सदा पूजनीय सर्व ऋषिगणों की संख्या तीन लाख बीस हजार (3,20,000) जानो।

पउमप्पह-जिण-सहाइ, सव्व-केवलिणो बारस-सहस्सा।
तिलक्ख-तीस सहस्सा, रिसी भव्वेहि वंदणीया।।568।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की सभा में बारह हजार सामान्य केवली हुए। इस प्रकार तीन लाख तीस हजार (3,30,000) सर्व ऋषिगण भव्यों के द्वारा वंदनीय हैं।

सुपास-तित्थयरस्स य, केवलिणो एयारस-सहस्साणि।
रिसी गणा तेलक्खा, चित्त-विसुद्धि-हेदु सहाए।।569।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर की सभा के ग्यारह हजार (11,000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार चित्त की विशुद्धि के हेतु तीन लाख (3,00,000) सर्वऋषिगण जानो।

चंदप्पह-जिणिंदस्स, केवलिणो अट्ठारस-सहस्साणि।
अड्ढाइज्ज-लक्खाणि, सव्वरिसिगणा समवसरणे।।570।।

अर्थ-श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्र के समवशरण में अट्ठारह हजार (18,000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या ढ़ाई लाख (2,50,000) जानो।

सुविहिणाह-जिणवरस्स, पंचहत्तरि-सयाइं केवलिणो।
बेलक्खाइं सव्वा, रिसिगणा सुहधम्म-सहाए।।571।।

अर्थ-श्री सुविधिनाथ जिनवर की शुभधर्म सभा में पचहत्तर सौ (7500) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या दो लाख (2,00,000) जानो।

सीयलणाह-देवस्स, सत्तसहस्स-सामण्ण-केवलिणो।
लक्खं सव्वरिसिगणा, धम्मपवट्टगस्स सहाए।।572।।

अर्थ-धर्म प्रवर्तक श्री शीतलनाथ देव की सभा में सात हजार (7000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या एक लाख (1,00,000) जानो।

सेयंसणाह-जिणस्स, सव्व केवलिणो पंचसट्ठिसया।
चुलसीदि-सहस्साइं, रिसीगणा य समवसरणम्मि।।573।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ जिन के समवशरण में पैसठ सौ (6500) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या चौरासी हजार (84,000) जानो।

पढम-बालजदिस्स सड-सहस्साइं सामण्णकेवलिणो।
बावत्तरि-सहस्साणि, रिसी य वासुपुज्ज-सहाए।।574।।

अर्थ-प्रथम बालयति श्री वासुपूज्य भगवान् की सभा में छः हजार (6000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या बहत्तर हजार (72,000) जानो।

सिरि विमलणाह जिणस्स, पंचावण्ण-सयाइं केवलिणो।
अट्ठसट्ठी सहस्सा, रिसीगणा वर-धम्म-सहाइ।।575।।

अर्थ-श्री विमलनाथ जिन की श्रेष्ठ धर्मसभा में पचपन सौ सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या अड़सठ हजार (68,000) जानो।

अणंतणाहस्स धम्म-सहाए केवली पंचसहस्सा।
छसट्ठी-सहस्साइं, रिसी भव्वाणं मंगल्ला।।576।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ जिन की धर्मसभा में पाँच हजार (5000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार भव्यों के लिए मंगलकारी सर्वऋषिगणों की संख्या छियासठ हजार (66,000) जानो।

धम्मणाह-जिणेसस्स, पंचतालीस-सयाणि केवलिणो।
चदुसट्ठिसहस्साइं, रिसीगणा सुह-समवसरणे।।577।।

अर्थ-श्री धर्मनाथ जिनेश के शुभ समवशरण में पैतालीस सौ (4500) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या चौसठ हजार (64000) जानो।

तिण्णिपदधारग-संतिणाहस्स केवलिणो चदुसहस्सा।
बेसट्ठी सहस्साणि, रिसीगणा य समवसरणम्मि।।578।।

अर्थ-त्रिपद धारक श्री शांतिनाथ भगवान् के समवशरण में चार हजार (4000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या बासठ हजार (62,000) जानो।

तित्थेसर-कुंथुणाह-जिणस्स बत्तीस-सया केवलिणो।
सट्ठि-सहस्साणि रिसी, खेमंकरे समवसरणम्मि।।579।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ जिनेंद्र के कल्याणकारी समवशरण में बत्तीस सौ (32,00) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या साठ हजार (60,000) जानो।

अरणाह-समवसरणे, अट्ठावीस-सयाइं केवलिणो।
पण्णास-सहस्साइं, णिग्गंथ-रिसी मुणेदव्वा।।580।।

अर्थ-श्री अरनाथ तीर्थंकर के समवशरण में अट्ठाईस सौ (2800) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्व निर्ग्रंथ ऋषिगणों की संख्या पचास हजार (50,000) जानना चाहिए।

मोह-मल्ल-णासगस्स, केवलिणो तह बावीस-सयाइं।
चालीस-सहस्साइं, रिसी मल्लिजिण-समवसरणे।।581।।

अर्थ-मोह मल्ल के नाशक श्री मल्लिनाथ जिन के समवशरण में बाईस सौ (22,00) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या चालीस हजार (40,000) जानो।

मुणिसुव्वदणाहस्स य, अट्ठारस-सया केवली सव्वा।
तीस-सहस्साणि रिसी, तित्थयरस्स समवसरणम्मि।।582।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के समवशरण में अट्ठारह सौ (18,00) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या तीस हजार (30,000) जानो।

णमिणाह-समवसरणे, सोलस-सयाइं सव्व-केवलिणो।
बीस-सहस्साणि रिसी, णादव्वा तिहुवण-सामिस्स।।583।।

अर्थ-त्रिभुवन के स्वामी श्री नमिनाथ जिन के समवशरण में सोलह सौ (16,00) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्व ऋषिगणों की संख्या बीस हजार (20,000) जानना चाहिए।

धम्मणेमि-णेमिणाह-जिणिंदस्स केवलि-पण्णरस-सया।
अट्ठारस-सहस्साणि, रिसीगणा य समवसरणम्मि।।584।।

अर्थ-धर्मनेमि श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र के समवशरण में पंद्रह सौ (1500) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या अट्ठारह हजार (18,000) जानो।

उवसग्ग-जयि-तित्थयर-पासणाहस्स सहस्स-केवलिणो।
सोलस-सहस्साइं च, रिसीवरा सुहसमवसरणे।।585।।

अर्थ-उपसर्गजयी श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के शुभ समवशरण में एक हजार (1000) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्व ऋषिगणों की संख्या सोलह हजार (16,000) जानो।

महावीर-वट्टमाण-सासण-णायगस्स सत्तसयाइं।
केवलिणो तह चउदस-सहस्सा-रिसी समवसरणे।।586।।

अर्थ-वर्तमान शासक नायक श्री महावीर स्वामी के समवशरण में सात सौ (700) सामान्य केवली हुए। इस प्रकार सर्वऋषिगणों की संख्या चौदह हजार (14000) जानो।

आर्यिकाओं की संख्या

गणि-बम्हीए-सहिदा, अड्ढुट्ठ-लक्खाणि धम्म-सहाए।
तित्थयर-उसहजिणस्स, अज्जा वंदणीया भवीहि।।587।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री वृषभनाथ जिन की धर्म सभा में भव्यों के द्वारा वंदनीय गणिनी ब्राह्मी सहित साढ़े तीन लाख (3,50,000) आर्यिकाएँ थीं।

गणि-पकुज्जा-संजुदा, तिण्णिलक्खाइं वीससहस्साणि।
अज्जा समवसरणम्मि, तित्थेस-सिरि-अजियदेवस्स।।588।।

अर्थ-तीर्थेश श्री अजित देव के समवशरण में गणिनी प्रकुब्जा सहित तीन लाख बीस हजार (3,20,000) आर्यिकाएँ थीं।

धम्म-सिरि-मुक्ख-जुत्ता, तियलक्खाणि य तीस-सहस्साइं।
देवसंभवणाहस्स, समवसरणम्मि विरदीओ य।।589।।

अर्थ-श्री संभवनाथ देव के समवशरण में व्रती गणिनी धर्मश्री सहित तीन लाख तीस हजार (3,30,000) आर्यिकाएँ थीं।

मेरुसेणादी तिण्णि-लक्खाइं तह तीस-सहस्साइं।
सड-सयाइं च अज्जा, अजिणंदणणाहस्स सहाइ।।590।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ भगवान् की सभा में मेरुषेणादि तीन लाख तीस हजार छह सौ (3,30,600) आर्यिकाएँ थीं।

अणंताइ-वर-अज्जा, वस-णायग-सुमदिणाह-जिणिंदस्स।
तिण्णिलक्खाइं तीस-सहस्साइं समवसरणम्मि।।591।।

अर्थ-धर्म नायक श्री सुमतिनाथ जिनेंद्र के समवशरण में गणिनी अनंता आदि तीन लाख तीस हजार (3,30,000) आर्यिकाएँ थीं।

गणि-रदिसेणाइ-जुदा, चउलक्खाइं वीससहस्साइं।
अज्जा पउमप्पहस्स, समवसरणम्मि मुणेदव्वा।।592।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिन के समवशरण में गणिनी रतिषेणा सहित चार लाख बीस हजार (4,20,000) आर्यिकाएँ जानना चाहिए।

मीणाइ-सेट्ठ-अज्जा, तिण्णि-लक्खाणि तीस-सहस्साइं।
सिरिसुपासणाहस्स हु, संविदव्वा समवसरणम्मि।।593।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिन के समवशरण में गणिनी मीना सहित तीन लाख तीस हजार (3,30,000) आर्यिकाएँ जानना चाहिए।

सुट्ठु वरुणाइ-अज्जा, वीस-सहस्स-णूण-चदुलक्खाइं।
जिणिंद-चंदप्पहस्स, समवसरणम्मि विआणेज्जा।।594।।

अर्थ-जिनेन्द्र चंद्रप्रभ के समवशरण में श्रेष्ठ वरुणा सहित बीस हजार वर्ष कम चार लाख अर्थात् तीन लाख अस्सी हजार (3,80,000) आर्यिकाएँ जानना चाहिए।

घोसाइ-सेट्ठ-अज्जा, तिलक्खाइं असीदि-सहस्साइं।
जिणिंद-सुविहिणाहस्स, समवसरणम्मि मुणेदव्वा।।595।।

अर्थ-श्री सुविधिनाथ जिनेंद्र के समवशरण में श्रेष्ठ घोषा सहित तीन लाख 80 हजार (3,80,000) आर्यिकाएँ जानना चाहिए।

अज्जा तियलक्खाइं, बेघणगुणिदाणि दससहस्साइं।
गणि-धरणा-संजुत्ता, सीयलणाह-समवसरणम्मि।।596।।

अर्थ-श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के समवशरण में गणिनी धरणा सहित तीन लाख अस्सी हजार (3,80,000) आर्यिकाएँ थीं।

एग-लक्खं तह तीस-सहस्साइं गणि-चारणा जुत्ता।
अज्जा समवसरणम्मि, तित्थयर-सेयंसणाहस्स।।597।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के समवशरण में गणिनी चारणा सहित एक लाख तीस हजार (1,30,000) आर्यिकाएँ थीं।

वरसेणादी अज्जा, एय-लक्खं तह सडसहस्साइं।
वासुपुज्जजिणिंदस्स, धणद-णिम्मिद-समवसरणम्मि।।598।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य जिनेंद्र के धनद निर्मित समवशरण में वरसेनादि एक लाख छह हजार (1,06,000) आर्यिकाएँ थीं।

मुक्ख-पोम्मादि अज्जा, एग-लक्खं च तिण्णिसहस्साइं।
तित्थेस विमलजिणस्स, रयण-मणि-खचिद-समवसरणे।।599।।

अर्थ-तीर्थेश श्री विमलनाथ जिनेंद्र के रत्न मणि खचित समवशरण में मुख्य पद्मा आदि एक लाख तीन हजार (1,03,000) आर्यिकाएँ थीं।

सव्वसिरी-आइ-सव्व-अज्जा अट्ठसहस्सुत्तर-लक्खं।
अणंतणाह-देवस्स, अदिसय-पुण्णसोद-सहाए।।600।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ देव की अतिशय पुण्य की श्रोत ऐसी धर्मसभा में प्रमुख सर्वश्री आदि सर्व एक लाख आठ हजार (1,08,000) आर्यिकाएँ थीं।

गणि-सुव्वदाइ-जुत्ता, चदुसयुत्तर-बेसट्ठि-सहस्साणि।
जिणधम्म-तित्थ-णायग-धम्मणाहस्स समवसरणे।।601।।

अर्थ-जिनधर्म तीर्थनायक श्री धर्मनाथ जिन के समवशरण में गणिनी सुव्रता सहित बासठ हजार चार सौ (62400) आर्यिकाएँ थीं।

तिण्णिसय-समहिदाइं, सट्ठि-सहस्साइं समवसरणम्मि।
हरिसेणादी अज्जा, तिसय-धारग-संतिणाहस्स।।602।।

अर्थ-त्रिपदधारक श्री शांतिनाथ भगवान के समवशरण में हरिषेणादि सर्व तीन सौ अधिक साठ हजार (60,300) आर्यिकाएँ थीं।

तिसय-पण्णास-समहिद-सट्ठि-सहस्साइं समवसरणम्मि।
गणि-भाविदाइ-अज्जा, तित्थयर-सिरि-कुंथुणाहस्स।।603।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ तीर्थंकर के समवशरण में गणिनी भाविता आदि तीन सौ पचास अधिक साठ हजार (60,350) आर्यिकाएँ थीं।

मुक्ख-कुंथुसेणादी, अज्जा तित्थयर-सिरि-अरणाहस्स।
सट्ठि-सहस्साइं खलु, सोधम्मिंदाइ-जुद-सहाइ।।604।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री अरनाथ की सौधर्म आदि इन्द्रों से युक्त सभा में मुख्य कुन्थुसेना आदि साठ हजार (60,000) आर्यिकाएँ थीं।

मुक्खा महुसेणादी, सव्वज्जा पणवण्ण-सहस्साइं।
मोह-मल्ल-णासग-जिण-मल्लिणाहस्स समवसरणे।।605।।

अर्थ-मोहमल्ल के नाशक श्री मल्लिनाथ जिन के समवशरण में मुख्य मधुसेना आदि सर्व पचपन हजार (55,000) आर्यिकाएँ थीं।

पुप्फदत्ताइ-सव्वा, पण्णास-सहस्साणि अज्जा जाण।
सुव्वद-दायग-जिणवर-मुणिसुव्वदस्स समवसरणे।।606।।

अर्थ-सुव्रत के दायक श्री मुनिसुव्रतनाथ के समवशरण में पुष्पदन्ता आदि सर्व पचास हजार (50,000) आर्यिकाएँ जानो।

पहाण-मग्गिणि-सहिदा, अज्जा पणदालीस-सहस्साइं।
तित्थयर-णमिणाहस्स, सेय-कारग-समवसरणम्मि।।607।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री नमिनाथ के कल्याणकारक समवशरण में प्रधान मार्गिणी सहित पैंतालीस हजार (45,000) आर्यिकाएँ थीं।

जक्खिणि-गणि-संजुत्ता, अज्जा सव्वा दाल-सहस्साइं।
बावीसइम-तित्थयर-णेमिणाहस्स समवसरणे।।608।।

अर्थ-बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ के समवशरण में गणिनी यक्षिणी सहित सर्व चालीस हजार (40,000) आर्यिकाएँ थीं।

गणिसुलोयाइ-सहिदा, बेगुणिद-ऊणवीस-सहस्साइं।
सिरिपासणाहजिणस्स, समवसरणे अज्जा णेया।।609।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ जिन के समवशरण में गणिनी सुलोका सहित दो से गुणित उन्नीस अर्थात् अड़तीस हजार (38,000) आर्यिकाएँ थीं।

गणि-चंदणाइ-जुत्ता, तिगुणिदाइं बारससहस्साइं।
सिरिमहावीर-जिणस्स, अज्जा मंगल-समवसरणे।।610।।

अर्थ-श्री महावीर जिन के मंगल समवशरण में गणिनी चंदना सहित तीन से गुनित बारह अर्थात् छत्तीस हजार (36000) आर्यिकाएँ थीं।

श्रावक-श्राविका

सावया तिण्णिलक्खा, उसहादु चंदप्पहस्स सहाए।
सावया-पंचलक्खा, अप्पभवे लहिस्संति सिवं।।611।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ से श्री चंद्रप्रभ जिन की सभा में तीन लाख श्रावक व पाँच लाख श्राविकाएँ थीं जो अल्पभव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

सावया दोण्णिलक्खा, पुप्फदंतादु संतिजिण-सहाए।
सावया चदुलक्खाणि, अचिरं कल्लाणाय सक्का।।612।।

अर्थ-श्री पुष्पदंत जिन से श्री शांतिनाथ तक की सभा में शीघ्र कल्याण करने में समर्थ दो लाख श्रावक व चार लाख श्राविकाएँ थीं।

सावया एगलक्खं, कुंथुजिणादु वीर-समवसरणम्मि।
सावया तिण्णिलक्खा, कुगदिं णासेदुं समत्था।।613।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ जिन से श्री महावीर स्वामी तक के समवशरण में कुगति का नाश करने में समर्थ एक लाख श्रावक व तीन लाख श्राविकाएँ थीं।

यक्ष-यक्षिणी नाम निर्देश

गोवदणो जक्खो तह, जक्खी चक्केसरी समवसरणे।
तित्थयर-उसहस्स ते, जिणधम्म-रक्खगा वड्ढगा।।614।।

अर्थ-श्री वृषभनाथ तीर्थंकर के समवशरण में जिनधर्म के रक्षक व संवर्धक गोवर्धक यक्ष व चक्रेश्वरी यक्षिणी हुए।

तित्थयर-अजियजिणस्स, महाजक्खो रोहिणी जक्खिणी य।
तेहि उवासिदो पहू, दाएज्ज मे सस्सद-विजयं।।615।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री अजितनाथ जिनेंद्र के महायक्ष यक्ष व रोहिणी यक्षिणी हुए। उनके द्वारा उपासिक प्रभु मेरे लिए शाश्वत विजय देवें।

तिमुहो पण्णत्ती तह, जक्खो जक्खिणी संभवणाहस्स।
णियमेण थोगभवेसु, लहिस्संति ते सुणिव्वाणं।।616।।

अर्थ-श्री संभवनाथ जिन के त्रिमुख यक्ष व प्रज्ञप्ति यक्षिणी हुए। वे नियम से अल्पभवों में सुनिर्वाण प्राप्त करेंगे।

जक्खेसरो य जक्खो, वज्जसंकला जक्खिणी जाणेह।
अहिणंदण-जिणिंदस्स, वरधम्मतित्थपवट्टगस्स।।617।।

अर्थ-उत्कृष्ट धर्मतीर्थ के प्रवर्तक अभिनंदन जिन के यक्षेश्वर नामक यक्ष व वज्रश्रृंखला नामक यक्षिणी जानो।

सिरितुंबुरओ जक्खो, जक्खिणी वज्जंकुसा णादव्वा।
तेहिं अच्चिदो सुमदि-णाहो मे सुमदिं दाएज्ज।।618।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ भगवान् के तुम्बुख यक्ष व वज्रांकुशा यक्षिणी जानना चाहिए। इनसे अर्चित श्री सुमतिनाथ जिन मुझे सुमति देवें।

मादंगो तह अप्पदिचक्केसरी जक्ख-जक्खिणी जाण।
तेहि उवासिद-पउमप्पहो वसदु मम हिअय-पउमे।।619।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ भगवान् के मातंग यक्ष तथा अप्रति चक्रेश्वरी यक्षिणी जानो उनके द्वारा उपासित श्री पद्मप्रभ मेरे हृदय कमल में वास करें।

विजयो पुरिसदत्ता य, जक्खो जक्खिणी सुपासणाहस्स।
सत्तम-तित्थयरस्स य, कम्म-पास-विच्छेदगस्स हु।।620।।

अर्थ-कर्म पाश के विच्छेदक सप्तम तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ जिनेंद्र के विजय नामक यक्ष व पुरुषदत्ता नामक यक्षिणी हुई।

अजिदो य मणोवेगा, जक्ख-जक्खिणी सिरिचंदप्पहस्स।
अट्ठम-तित्थयरस्स हु, मम मण-कुमुदिणि-विगासगस्स।।621।।

अर्थ-मेरे चित्त रूपी कुमुदनी के विकासक अष्टम तीर्थंकर श्री चंद्रप्रभ के अजित नामक यक्ष व मनोवेगा यक्षिणी हुए।

बंभो जक्खो काली, जक्खिणी सिरिपुप्फदंतणाहस्स।
सुविहिणाहजिणस्स वा, सव्व-पाव-विहि-विणासगस्स।।622।।

अर्थ-सर्व पाप कर्मों के विनाशक श्री पुष्पदंत अथवा सुविधिनाथ जिन के ब्रह्म नामक यक्ष व काली नामक यक्षिणी हुई।

बंभोत्तरो य जक्खो, जक्खिणी जालामालिणी णेया।
जिणिंद-सीयलपहुस्स, संसार-संताव-समणस्स।।623।।

अर्थ-संसार ताप का शमन करने वाले श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के ब्रह्मोत्तर नामक यक्ष व ज्वालामालिनी नामक यक्षिणी जानना चाहिए।

कोमार-जक्खेणं च, महाकालि-जक्खिणीए भत्तेहि।
सुपूजिद सिरि-सेयंसणाहो कुव्वदु मज्झ सेयं।।624।।

अर्थ-जिनभक्त कुमार यक्ष तथा महाकाली यक्षिणी के द्वारा सुपूजित श्री श्रेयांसनाथ जिन मेरा कल्याण करें।

जक्ख-छम्मुहो गउरी, जक्खिणी तह आराहिदो तेहिं।
वासुपुज्जो जिणवरो, दाएज्ज आरोग्गं मज्झं।।625।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य भगवान् के षण्मुख यक्ष व गौरी यक्षिणी हुए। उनके द्वारा आराधित श्री वासुपूज्य जिनवर मुझे आरोग्य देवें।

जक्खेण पादालेण, गंधारि-जक्खिणि-उवासिद-विमलो।
पावमलं पक्खालदु, मज्झं तिप्पदु विमलबुद्धिं।।626।।

अर्थ–पाताल यक्ष व गांधारी यक्षिणी से उपासित श्री विमलनाथ भगवान् मेरे पाप मल का प्रक्षालन करें व मुझे विमलबुद्धि प्रदान करें।

किण्णरो य वेरोटी, जक्खो-जक्खिणी अणंतणाहस्स।
अणंतदंसणणाणं, तिप्पदु तिलोयणाहो मज्झ।।627।।

अर्थ–श्री अनंतनाथ जिनेंद्र के किन्नर नामक यक्ष व वैरोटी नामक यक्षिणी हुई। वे त्रिलोकीनाथ अनंतनाथ भगवान् मुझे अनंत दर्शन व अनंत ज्ञान प्रदान करें।

किंपुरिसो जक्खो तह, जक्खिणी अणंतमदी जिणिंदस्स।
दियावदु धम्मणाहो, सामच्छं सधम्म-पत्तीइ।।628।।

अर्थ–श्री धर्मनाथ जिनेंद्र के किम्पुरुष यक्ष व अनन्तमती यक्षिणी हुए। वे धर्मनाथ भगवान् स्वधर्म प्राप्ति की शक्ति प्रदान करें।

गरुडेणं जक्खेणं, माणसि-जक्खिणीइ सुपूजिद-जिणो।
तित्थयर-संतिणाहो, तिप्पदु मे सस्सदं संतिं।।629।।

अर्थ–गरुड यक्ष व मानसी यक्षिणी से सुपूजित तीर्थंकर श्री शांतिनाथ जिनेंद्र मुझे शाश्वत शांति प्रदान करें।

गंधव्वेण जक्खेण, महामाणसि-जक्खिणीइ वंदिदो।
तित्थयर-कुंथुणाहो, आयामदु बोहिलाहं मे।।630।।

अर्थ–गन्धर्व यक्ष व महामानसी यक्षिणी से वंदित श्री कुंथुनाथ तीर्थंकर मुझे बोधि का लाभ देवें।

कुबेरो जक्खो जया-जक्खिणी जिणवरिंद-अरणाहस्स।
णिम्मल-परिणामो मे, पहु-भत्तीए सय सय होज्ज।।631।।

अर्थ–श्री अरनाथ जिनेन्द्र के कुबेर यक्ष व जया यक्षिणी हुए। प्रभु भक्ति से मेरे सदा सदा निर्मल परिणाम होवें।

वरुणो जक्खो विजया, जक्खिणी तित्थयर-मल्लिणाहस्स।
मोहमल्ल-विणासगो, खयेदु मोहणिज्जं मज्झं।।632।।

अर्थ-श्री मल्लिनाथ तीर्थंकर के वरुण यक्ष व विजया यक्षिणी हुए। मोह मल्ल के विनाशक वे मल्लिनाथ जिनेंद्र मेरे मोहनीय कर्म का क्षय करें।

भकुडि-जक्खो जक्खिणी, अपराजिदा मुणिसुव्वयणाहस्स।
सुव्वयं जिणवरो मे, तिप्पेदु परिणाम-सुद्धिं च।।633।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रतनाथ जिन के भृकुटि यक्ष व अपराजिता यक्षिणी हुए। वे जिनवर मुझे परिणामों की शुद्धि व सुव्रत प्रदान करें।

गोमेधो जक्खो तह, बहुरूविणि-जक्खिणी णमिणाहस्स।
दियावदु णम्मवित्तिं, मे तव पदंबुज-विणमिदस्स।।634।।

अर्थ-श्री नमिनाथ भगवान् के गोमेध यक्ष तथा बहुरूपिणी यक्षिणी हुए। हे जिनेन्द्र प्रभु! आपके पादाम्बुज में विनत मेरे लिए नम्रवृत्ति देवें।

पासो तह कुंभंडी, जक्खो जक्खिणी हु णेमिणाहस्स।
उक्किट्ठ-सुक्क-झाणं, आयामदु भयवदो मज्झं।।635।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ जिन के पार्श्व यक्ष तथा कूष्मांडी यक्षिणी हुए। वे भगवान् मेरे लिए उत्कृष्ट शुक्ल ध्यान प्रदान करें।

मातंगो जक्खो खलु, पउमा जक्खिणी य पासणाहस्स।
भव-पासं णासदु मे, अवगुणं तह तिलोयणाहो।।636।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ भगवान् के मातंग और पद्मा नामक यक्ष-यक्षिणी हुए। वे त्रिलोकीनाथ मेरे अवगुण तथा भव पाश का नाश करें।

गुज्झको जक्खो तह, सिद्धायिणी जक्खिणी हु वीरस्स।
मे अणंतवीरजादि-चदुट्ठयं तिप्पदु जिणवरो।।637।।

अर्थ-श्री वीर जिन के गुह्यक यक्ष तथा सिद्धायिनी यक्षिणी हुए। वे जिनवर मुझे अनंतवीर्यादि चतुष्टय प्रदान करें।

मुख्य श्रोता

उसहाइ-सव्वजिणाण, भणिदा मुक्खसोदा समवसरणे।
तब्भवम्मि अग्गे वा, लहदि सिवं पुण्णवंता ते।।638।।

अर्थ-श्री ऋषभादि सभी जिनों के समवशरण में मुख्य श्रोता कहे गए हैं। वे पुण्यवान् जीव भी उस भव में या आगे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

णामाणि णादव्वाणि, भव्वजीवा हु सगहिदाय ताणं।
जीवस्स जहा णाणं, तहेव कम्मासवो होज्जा।।639।।

अर्थ-भव्य जीवों को स्वहित के लिए उनके नाम जानने चाहिए। क्योंकि जीव का जैसा ज्ञान होता है वैसा कर्मास्रव भी होता है।

भरद-सगर-सच्चवीर-मित्तभाव-मित्त-धम्मवीरिया य।
दाणवीरियो मघवा, बुद्धिवीरियो सीमंधरो।।640।।

सिरितिपिट्ठो सयंभू, पुरिसोत्तमो य पुरिसपुंडरीको।
सच्चदत्तो कुणालो, णारायणो तहा सुभोमो।।641।।

सव्वभोम-अजितंजय-विजय-उग्गसेणा महासेणो य।
सेणिगो मुक्ख-सोदा, तित्थयराण कमेण मुणेदव्वा।।642।।

अर्थ-भरत, सगर, सत्यवीर, मित्रभाव, मित्रवीर्य, धर्मवीर्य, दानवीर्य, मघवा, बुद्धिवीर्य, सीमंधर, त्रिपिष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषपुंडरीक, सत्यदत्त, कुनाल, नारायण, सुभौम, सर्वभौम, अजितंजय, विजय, उग्रसेन, महासेन और श्रेणिक ये तीर्थंकरों के क्रमशः मुख्य श्रोता जानने चाहिए।

तीर्थंकरों के केवलज्ञान स्थान, तिथि, समय का निर्देश

पुरिमतालपुर-सगडे, वणम्मि जादं केवलं-उसहस्स।
फग्गुण-असिदेयारसि-पुव्वण्हे उत्तरासाढे।।643।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ जिन को फाल्गुन कृष्ण एकादशी के पूर्वाह्न में उत्तराषाढ़ नक्षत्र में पुरिमतालपुर के निकट शकर वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

साकेद-सहेदुगम्मि, वणम्मि जादं केवलं अजियस्स।
पुस्स-सिद-चोद्दसीए, अवरण्हम्मि रोहिणीए य।।644।।

अर्थ-श्री अजितनाथ जिन को पौष-शुक्ला चतुर्दशी के अपराह्न में रोहिणी नक्षत्र में साकेत नगर के निकट सहेतुक वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

सावत्थि-सहेदुगम्मि, वणे संभवस्स केवलुप्पण्णं।
कत्तिग-सिद-पणमीए, अवरण्हम्मि मिगसिराए य।।645।।

अर्थ-श्री संभवनाथ जिन को कार्तिक शुक्ला पंचमी के अपराह्न में मृगशिरा नक्षत्र में श्रावस्ती नगर के निकट सहेतुक वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

अजुद्धा-उग्गरण्णे, अहिणंदणस्स केवलमुप्पण्णं।
पुस्स-सिद-पुण्णिमाए, अवरण्हम्मि पुणव्वसुम्मि य।।646।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ जिन को पौष शुक्ला पूर्णिमा के अपराह्ण में पुनर्वसु नक्षत्र में अयोध्या नगरी के निकट उग्र वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

अजुद्धा-सहेदुगम्मि, वणे सुमदिस्स केवलमुप्पण्णं।
वइसाह-सिद-दसमीइ, अवरण्हे मघा-णक्खत्ते।।647।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिन को वैशाख शुक्ल दसमी के अपराह्न में मघा नक्षत्र में अयोध्या नगरी के निकट सहेतुक वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

कोसंबि-मणोहरम्मि, अरण्णे पउमप्पहस्स केवलं।
वइसाह-सिद-दसमीइ, अवरण्हे जादं चित्ताइ।।648।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिन को वैशाख शुक्ला दशमी के अपराह्न में चित्रा नक्षत्र में कौशांबी नगरी के निकट मनोहर वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

कासि-सहेदुगरण्णे-सजोगकेवली सुपासणाहो य।
फग्गुण-किण्हे-सत्तमि-अवरण्हे चित्ताइ होही।।649।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिन को फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के अपराह्न में चित्रा नक्षत्र में काशी नगरी के निकट सहेतुक वन में सयोग केवली अवस्था अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

चंदपुरि-सव्वत्थम्मि, चंदप्पहस्स य केवलं जादं।
फग्गुण-असिदे सत्तमि-अवरण्हम्मि अणुराहाए।।650।।

अर्थ-श्री चंद्रप्रभ जिन को फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के अपराह्न में अनुराधा नक्षत्र में चंद्रपुरि के निकट सर्वार्थ वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

काकंदि-पुप्फ-विविणे, सजोगकेवली सुविहिणाहो तह।।
कत्तिय-सुक्क-तदियम्मि, अवरण्हे मूले होहीअ।।651।।

अर्थ-श्री सुविधिनाथ जिन को कार्तिक शुक्ला तृतीया के अपराह्न में मूल नक्षत्र में काकंदि नगरी के निकट पुष्पवन में सयोग केवली अवस्था अर्थात् केवलज्ञान हुआ।

भद्दिल-सहेदुग-वणे, सीयलजिणस्स केवलमुप्पण्णं।
पुस्स-किण्ह-चोद्दसीइ, अवरण्हे पुव्वासाढाइ।।652।।

अर्थ-श्री शीतलनाथ जिन को पौष कृष्ण चतुर्दशी के अपराह्न में पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में भद्रिल नगर के निकट सहेतुक वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

सिंहणादपुर-णियडे, मणोहरम्मि केवली सेयंसो।
माघमावसीइ सवण-रिक्खे पुव्वण्हम्मि होही।।653।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ जिन को माघ की अमावस्या को पूर्वाह्न में श्रवण नक्षत्र में सिंहनादपुर के निकट मनोहर वन में केवलज्ञान हुआ।

चंपापुर-मणोहरे, लहिदं केवलं वासुपुज्जेणं।
माघ-सिद-पुण्णिमाए, अवरण्हे विसाहा-रिक्खे।।654।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य जिन ने माघ शुक्ल पूर्णिमा के अपराह्न में विशाखा नक्षत्र में चंपापुर नगर के निकट मनोहर वन में केवलज्ञान प्राप्त किया।

कंपिला-सहेदुगम्मि, विमलणाहो होही सव्वदंसी।
पुस्स-सुक्क-दसमीए, अवरण्हे उत्तरासाढे।।655।।

अर्थ-श्री विमलनाथ जिन पौष शुक्ला दशमी के अपराह्न में उत्तराषाढ़ नक्षत्र में कंपिला नगरी के निकट सहेतुक वन में सर्वदर्शी हुए।

अजुद्धा-सहेदुगम्मि, लहिदमणंतणाणमणंतजिणेण।
चेत्त-अमावस्साए, अवरण्हम्मि रेवदि-रिक्खे।।656।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ जिन ने चैत्र की अमावस्या के अपराह्न में रेवती नक्षत्र में अयोध्या नगरी के निकट सहेतुक वन में अनंतज्ञान प्राप्त किया अर्थात् केवलज्ञानी हुए।

रयणपुरि-सहेदुगम्मि, धम्मणाहस्स य केवलं जादं।
पुस्स-सिद-पुण्णिमाए, अवरण्हे पुस्स-णक्खत्ते।।657।।

अर्थ-श्री धर्मनाथ जिन को पौष शुक्ल पूर्णिमा को अपराह्न में पुष्य नक्षत्र में रत्नपुरि नगरी के निकट सहेतुक वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

हत्थिणायपुर-णियडे, अंब-विविणे संतिजिणस्स जादं।
अवरण्हम्मि केवलं, पुस्स-सिदेयारसि-भरणीइ।।658।।

अर्थ-श्री शांतिनाथ जिन को पौष शुक्ला एकादशी के अपराह्न में भरणी नक्षत्र में हस्तिनापुर के निकट आम्र वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

हत्थिणायपुर-विविणे, सहेदुगम्मि कुंथुणाहो होही।
सजोग-केवली-चेत्त-सिद-तदियवरण्ह-कित्तियाइ।।659।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ जिन चैत्र शुक्ला तृतीया के अपराह्न में कृत्तिका नक्षत्र में हस्तिनापुर के निकट सहेतुक वन में सयोगकेवली हुए।

गयपुर-सहेदुग-वणे, होही अरणाहो अणंतणाणी।
कत्तिय-सिद-बारसीइ, रेवदि-रिक्खे अवरण्हम्मि।।660।।

अर्थ-श्री अरनाथ जिन कार्तिक शुक्ल द्वादशी के अपराह्न में रेवती नक्षत्र में गजपुर नगर के निकट सहेतुक वन में अनंतज्ञानी हुए।

मिहिला-मणोहर-वणे, मल्लिणाहस्स केवलमुप्पण्णं।
फग्गुण-किण्हे बारसि-अस्सिणीए दिण-पच्छिमम्मि।।661।।

अर्थ-श्री मल्लिनाथ जिन को फाल्गुन कृष्ण द्वादशी को दिन के पश्चिम

भाग में अश्विनी नक्षत्र में मिथिला नगरी के निकट मनोहर वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

कुसग्ग-णियडे णीले, मुणिसुव्वयेणं घादिदा घादी।
फग्गुण-किण्ह-छट्ठीइ, सवणम्मि य दिवस-उत्तरम्मि।।662।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रतनाथ जिन ने फाल्गुन कृष्ण षष्ठी को दिन के उत्तर भाग में श्रवण नक्षत्र में कुशाग्र नगर के निकट नील वन में घातिया कर्मों का घात किया अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त किया।

मिहिला-चित्तकाणणे, केवलं संजादं णमिणाहस्स।
चेत्त-सुक्क-तदिय-दिणे, अवरण्हम्मि अस्सिणि-रिक्खे।।663।।

अर्थ-श्री नमिनाथ जिन को चैत्र शुक्ल तृतीया के दिन अपराह्न में अश्विनी नक्षत्र में मिथिला नगरी के निकट चित्र वन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

गिरिणयर-सहस्सारे, णेमिणाह-तिहुवण-सामी होही।
आसोअ-सुक्क-पढमे, दिवसुत्तरे चित्ता-रिक्खे।।664।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ जिन आसोज शुक्ला प्रतिपदा को दिन के उत्तर अर्थात् पूर्वाह्न में चित्रा नक्षत्र में गिरिनगर के निकट सहस्रार वन में त्रिभुवन के स्वामी अर्थात् केवलज्ञानी हुए।

अस्समकेसस्सवणे, पासणाहो जिणकेवली होही।
चेत्त-किण्ह-चदुत्थम्मि, विसाहा-पुव्वण्हे देवो।।665।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ जिन चैत्र कृष्ण चतुर्थी के पूर्वाह्न में विशाख नक्षत्र में आश्रमकेश वन में केवली जिन हुए।

जंभिगाए रिउकूल-णदि-तीरे केवली वड्ढमाणो।
वेसाह-सिद-दसमीइ, अवरण्हे हत्थम्मि होही।।666।।

अर्थ-श्री वर्धमान स्वामी वैशाख शुक्ला दशमी के अपराह्न में हस्त नक्षत्र में जृंभिका ग्राम के ऋजुकूला नदी के तट पर केवली हुए।

केवलिकाल

इगसहस्सवस्स-णूण-लक्ख-पुव्वा सिरिउसहजिणिंदस्स।
केवलिकाल-पमाणं, भासिदं पहु-सव्वण्हूहिं।।667।।

अर्थ-श्री वृषभजिनेंद्र का केवलिकाल एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व प्रमाण सर्वज्ञ प्रभु के द्वारा कहा गया है।

एय-पुव्वंग-बेदह-वस्स-णूण-एग-लक्ख-पुव्वाइं।
अजियणाह-जिणेसस्स, परिमाणं केवलिकालस्स।।668।।

अर्थ-श्री अजितनाथ जिनेश के केवलिकाल का प्रमाण बारह वर्ष और एक पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है।

चउदस-वस्स-संजुत्त-चउपुव्वंग-णूण-लक्ख-पुव्वा य।
केवलिकाल-पमाणं, तित्थयर-संभवजिणिंदस्स।।669।।

अर्थ-श्री संभवजिन तीर्थंकर के केवलिकाल का प्रमाण चौदह वर्ष, चार पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है।

अट्ठारस-वस्साहिय-अट्ठपुव्वंगूण-लक्खं पुव्वा।
अहिणंदणजिणिंदस्स, केवलिकालस्स परिमाणं।।670।।

अर्थ-श्री अभिनंदन जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण अठारह वर्ष और आठ पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है।

वीसदि-वस्साहिय-बेदहपुव्वंगूण-इगलक्खपुव्वा।
सुमदिणाहस्स केवलि-काल-परिमाणं-णिद्दिट्ठं।।671।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिन के केवलिकाल का प्रमाण बीस वर्ष, बारह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व निर्दिष्ट किया गया है।

सडमासाहिय-सोडस-पुव्वंग-हीण-इगलक्ख-पुव्वाणि।
जिणिंद-पउमणाहस्स, परिमाणं केवलिकालस्स।।672।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण 6 माह और सोलह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है।

णववस्स-समहिद-वीस-पुव्वंग-णूण-इगलक्खपुव्वाणि।
केवलिकाल-पमाणं, भणिदं सिरिसुपासणाहस्स।।673।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण नौ वर्ष और बीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व कहा गया है।

तिण्णिमास-समहिद-चउवीस-पुव्वंग-हीण-लक्ख-पुव्वा।
केवलिकाल-पमाणं, चंद-पहाव्व चंदप्पहस्स।।674।।

अर्थ-चंद्रमा की प्रभा के समान श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्र के केवलिकाल का प्रमाण तीन माह और चौबीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है।

चदुवस्साहिय-अट्ठा-वीसपुव्वंग-हीण-लक्ख-पुव्वा।
पुप्फदंत-जिणेसस्स, केवलिकालस्स परिमाणं।।675।।

अर्थ-श्री पुष्पदंत जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण चार वर्ष और अट्ठाईस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व है।

ति-संवच्छर-णूणाणि, पणवीस-सहस्साइं पुव्वाइं।
सीयलजिणस्स भणिदं, केवलिकालस्स परिमाणं।।676।।

अर्थ-श्री शीतलनाथ जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण तीन वर्ष कम पच्चीस हजार पूर्व कहा गया है।

दो-वच्छर-णूणाणि, एगवीस-लक्खाइं वस्साइं।
केवलिकाल-पमाणं, भासिदं सेयंसणाहस्स।।677।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र के केवलिकाल का प्रमाण दो वर्ष कम इक्कीस लाख वर्ष कहा गया है।

एग-वस्स-णूणाइं चउवण्ण-लक्खाइं वस्साइं च।
केवलिकाल-पमाणं, आइक्खिदं वासुपुज्जस्स।।678।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण एक वर्ष कम चौवन लाख वर्ष कहा गया है।

तिण्णि-वस्स-णूणाइं, पंचदस-लक्खाणि संवच्छराणि।
तित्थयर-विमलजिणस्स, परिमाणं केवलिकालस्स।।679।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री विमलनाथ जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण तीन वर्ष कम पंद्रह लाख वर्ष है।

बे-संवच्छर-णूणा, सत्तलक्ख-पंचसहस्सा वस्सा।
सिरि-अणंतजिणिंदस्स, आइक्खिदो केवलिकालो।।680।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण दो वर्ष कम सात लाख पाँच हजार वर्ष कहा गया है।

एग-वस्स-णूणाइं, अड्ढाइज्ज-लक्खाइं वस्साणि।
सिरि धम्मजिणदेवस्स, केवलिकालस्स परिमाणं।।681।।

अर्थ-श्री धर्मनाथ जिनदेव के केवलिकाल का प्रमाण एक वर्ष कम ढ़ाई लाख वर्ष है।

सोलस-वच्छर-हीणा, संवच्छरा पंचवीस-सहस्सा।
जिणिंदसंतिणाहस्स, वज्जरिदो सुकेवलिकालो।।682।।

अर्थ-श्री शांतिनाथ जिनेंद्र के शुभ केवलिकाल का प्रमाण सोलह वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष कहा गया है।

तेवीस-सहस्साइं, सत्तसय-चउतीस-समहिद-वस्सा।
कुंथुजिणतित्थयरस्स, उप्पालिदो केवलिकालो।।683।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ तीर्थंकर का केवलिकाल सात सौ चौंतीस अधिक तेईस हजार (23734) वर्ष कहा गया है।

सोलसवस्स-णूणाणि, इगवीस-सहस्स-संवच्छराइं।
केवलिकालो भणिदो, तित्थयर-अरणाह-देवस्स।।684।।

अर्थ-श्री अरनाथ तीर्थंकर देव का केवलिकाल सोलहवर्ष कम इक्कीस हजार वर्ष कहा गया है।

चउवण्ण-सहस्साइं, एग-णूण-णवसय-संवच्छराणि।
एयारस-मासा चउवीस-दिणा मल्लिजिणिंदस्स।।685।।

अर्थ-श्री मल्लिनाथ जिनेंद्र के केवलिकाल का प्रमाण चौवन हजार, एक कम नौ सौ वर्ष, ग्यारह मास चौबीस दिन है।

इगहीण-पंचहत्तरि-सयाइं वस्साइं एग-मासो।
कहिदो केवलिकालो, सिरिमुणिसुव्वद-णाह-जिणस्स।।686।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेंद्र का केवलिकाल एक कम पचहत्तर सौ वर्ष, एक माह कहा गया है।

णववस्स-णूणाइं च, पंचवीसदि-सयाइं वस्साइं।
केवलिकाल-पमाणं, तित्थयरसिरिणमिजिणिंदस्स।।687।।

अर्थ-श्री नमिनाथ तीर्थंकर जिन के केवलिकाल का प्रमाण नौ वर्ष कम पच्चीस सौ वर्ष है।

एग-वस्स-णूणाइं, सत्त-सय-वस्साइं दसमासा य।
चउ-दिवसाइं केवलि-कालो सिरिणेमिजिणिंदस्स।।688।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ जिनेंद्र का केवलिकाल एक वर्ष कम सात सौ वर्ष, दस माह और चार दिन है।

अट्ठमास-अहियाइं, ऊणत्तरि-वस्साइं जिणिंदस्स।
केवलिकाल-पमाणं, तित्थयर-सिरिपासणाहस्स।।689।।

अर्थ-श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के केवलिकाल का प्रमाण आठ माह अधिक उनत्तर वर्ष है।

तीस-वस्साणि केवलि-कालो वीरवड्ढमाणदेवस्स।
अरिहंतेहि भासिदो, संपइ-जिणधम्मवड्ढगस्स।।690।।

अर्थ-वर्तमान जिनधर्म प्रवर्तक श्री वीरवर्धमान देव का केवलिकाल तीस वर्ष अरिहंतों के द्वारा कहा गया है।

तीर्थकाल

एग-पुव्वंग-समहिद-पण्णासलक्खकोडिसायराइं।
तित्थपवट्टणकालो, अक्खिदो सिरिउसहदेवस्स।।691।।

अर्थ-श्री ऋषभदेव का तीर्थप्रवर्तन काल एक पूर्वांग अधिक पचास लाख करोड़ सागर कहा गया है।

तिण्णिपुव्वंग संजुद-तीसलक्खाणि कोडिसायराइं।
तित्थपवट्टणकालो, भासिदो सिरिअजियदेवस्स।।692।।

अर्थ-श्री अजितदेव का तीर्थप्रवर्तन काल तीन पूर्वांग सहित तीस लाख करोड़ सागरोपम कहा गया है।

चदु-पुव्वंग-अहियाणि, दसलक्खाइं कोडिसायराइं।
सिरिसंभवजिणिंदस्स, तित्थपवट्टणयालो जाण।।693।।

अर्थ-श्री संभवनाथ जिनेंद्र का तीर्थ प्रवर्तन काल चार पूर्वाङ्ग अधिक दस लाख करोड़ सागरोपम जानो।

चदुपुव्वंग-संजुत्त-णवलक्खाइं कोडिसायराइं।
अहिणंदण-जिणिंदस्स, तित्थपवट्टणयालो जाण।।694।।

अर्थ-श्री अभिनंदननाथ जिनेंद्र का तीर्थप्रवर्तन काल चार पूर्वांग सहित नौ लाख करोड़ सागरोपम जानो।

चदुपुव्वंगहियाइं, णवदिसहस्साणि कोडिसायराणि।
भासिदो तित्थकालो, जिणदेव-सिरिसुमदिणाहस्स।।695।।

अर्थ-श्री सुमतिनाथ जिनदेव का तीर्थप्रवर्तनकाल चार पूर्वाङ्ग अधिक नब्बै हजार करोड़ सागरोपम कहा गया है।

चदुपुव्वंग-संजुत्त-णवसहस्स-कोडि-सायरपमाणं।
तित्थपवट्टणयालो, कहिदो पउमप्पह-सामिस्स।।696।।

अर्थ-श्री पद्मप्रभ स्वामी का तीर्थप्रवर्तन काल चार पूर्वाङ्ग सहित नौ हजार करोड़ सागरोपम कहा गया है।

चदुपुव्वंग-समहिदा, णवसयकोडी सायरोवमाणं।
तित्थपवट्टणयालो, णिद्दिट्ठो सुपासणाहस्स।।697।।

अर्थ-श्री सुपार्श्वनाथ जिन का तीर्थप्रवर्तन काल चार पूर्वाङ्ग अधिक नौ सौ करोड़ सागरोपम निर्दिष्ट किया गया है।

चउपुव्वंगहियाओ, णवदिकोडीओ सायरपमाणं।
तित्थपवट्टणयालो, तित्थयर-चंदप्पह-जिणस्स।।698।।

अर्थ-श्री चंद्रप्रभ तीर्थंकर का तीर्थप्रवर्तन काल चार पूर्वाङ्ग सहित नब्बै करोड़ सागरोपम है।

तित्थपवट्टणकालो, अट्ठवीसपुव्वंग-समहिदाइं।
पल्ल-चदुत्थभागूण-णवकोडिसायर-अहियाइं।।699।।

समहिद-कालपमाणं, एगलक्खं पुव्वं मुणेदव्वं।
णवम-तित्थयर-जिणिंद-सिरिपुप्फदंतणाहस्स खलु।।700।।

अर्थ-नवम् तीर्थंकर श्री पुष्पदंत जिनेंद्र का तीर्थप्रवर्तन काल अट्ठाईस पूर्वाङ्ग अधिक पल्य के चतुर्थ भाग से हीन नौ करोड़ सागरोपम से अधिक है। इस अधिक काल का प्रमाण एक लाख पूर्व कहा गया है।

अद्धपल्ल-सय-सायर-णूणाणि इगकोडिसायरहियाणि।
तित्थपवट्टणयालो, तित्थयर-सिरिसीयलजिणस्स।।701।।

छसट्ठिलक्ख-छब्बीस-सहस्साणि संवच्छर-णूणाइं।
पणवीससहस्साइं, पुव्वाइं मुणेदव्वाइं।।702।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री शीतलनाथ जिनेंद्र का तीर्थप्रवर्तनकाल अर्धपल्योपम सहित सौ सागर कम एक करोड़ सागर से अधिक है। इस अतिरिक्त काल का प्रमाण छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम पच्चीस हजार पूर्व कहा गया है।

चउवण्णसायराइं, एगवीस-लक्ख-वस्सणूणाइं।
पल्लस्स तिचदुत्थंस-हीणाइं सेयंस-कालो।।703।।

अर्थ-श्री श्रेयांसनाथ भगवान् का तीर्थप्रवर्तन काल इक्कीस लाख वर्ष कम एक पल्य के तीन चतुर्थांश से रहित चौवन सागरोपम है।

चउवण्ण-लक्ख-वच्छर-णूणाइं एगपल्लरहिदाइं।
तीस-सायराइं सिरि-वासुपुज्जस्स तित्थ-कालो।।704।।

अर्थ-श्री वासुपूज्य भगवान् का तीर्थप्रवर्तन काल चौवन लाख वर्ष कम एक पल्य से रहित तीस सागरोपम है।

पण्णरस-लक्ख-वच्छर-हीण पल्लस्स तिचदुत्थंसूणा।
णव-सायरा पमाणं, विमलणाहस्स तित्थकालो।।705।।

अर्थ-श्री विमलनाथ जिन का तीर्थप्रवर्तन काल पद्रंह लाख वर्ष कम पल्य के तीन चतुर्थांश से हीन नौ सागर प्रमाण है।

चदुसायरा तह सत्त-लक्ख-पण्णाससहस्सवस्सूणा।
अद्धपल्लरहिदा सिरिअणंतजिणस्स तित्थकालो।।706।।

अर्थ-श्री अनंतनाथ जिन का तीर्थ प्रवर्तन काल सात लाख पचास हजार वर्ष कम अर्ध पल्य से रहित चार सागर है।

दोण्णिलक्खा पण्णास-सहस्सवस्सहीणा पल्लरहिदा।
तिण्णि-रयणायरुवमा, धम्मणाहस्स तित्थकालो।।707।।

अर्थ-श्री धर्मनाथ जिन का तीर्थप्रवर्तन काल दो लाख पचास हजार वर्ष कम एक पल्य से हीन तीन रत्नाकरोपम (सागरोपम) है।

पण्णास-वस्स-समहिद-बारससय-वच्छराणि पल्लद्धं।
भासिदो तित्थकालो, तित्थयरजिणसंतिणाहस्स।।708।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री शांतिनाथ जिन का तीर्थप्रवर्तन काल अर्धपल्य और पचास वर्ष अधिक बारह सौ वर्ष अर्थात् अर्धपल्य साढ़े बारह सौ वर्ष कहा गया है।

पण्णासहिय-सतवीस-सयूण-सहस्सकोडि-वस्स-हीणा।
पल्लस्स चदुब्भागो, तित्थकालो कुंथुणाहस्स।।709।।

अर्थ-श्री कुंथुनाथ जिनेंद्र का तीर्थप्रवर्तन काल एक हजार करोड़ में सत्ताईस सौ पचास कम वर्षों से हीन पल्य के चतुर्थभाग (प. 1/4 रिण व 9,99,99,97,250) प्रमाण है।

णवसयुत्तर-तेतीस-सहस्स-हीण-सहस्सकोडि-वस्सा।
तित्थपवट्टणकालो, तित्थयर-अर-जिणवरिंदस्स।।710।।

अर्थ-तीर्थंकर श्री अरनाथ जिनेंद्र का तीर्थप्रवर्तन काल तैंतीस हजार नौ सौ वर्ष कम एक हजार करोड़ वर्ष (9999966100) है।

चउवण्णलक्खवस्सा, सत्तचत्तालीससहस्साइं हु।
चदुसयाइं सिरिमल्लि-जिणस्स तित्थवट्टणकालो।।711।।

अर्थ-श्री मल्लिनाथ जिन का तीर्थप्रवर्तन काल चउवन लाख सैतालीस हजार चार सौ वर्ष (54,47,400) है।

पंचसहस्सहियाइं, सडलक्खाइं वच्छराइं जाण।
मुणिसुव्वय-जिणेसस्स, धम्मतित्थपवट्टणकालो।।712।।

अर्थ-श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्र का धर्मतीर्थप्रवर्तन काल पाँच हजार अधिक छह लाख वर्ष (605000) जानो।

दोसयूण-दोसहस्स-समहिद-पंचलक्ख-संवच्छराणि।
तित्थयरणमिणाहस्स, सेट्ठ-धम्मपवट्टणकालो।।713।।

अर्थ-श्री नमिनाथ तीर्थंकर का श्रेष्ठ धर्मप्रवर्तन काल दो हजार में दो सौ करके अर्थात् अट्ठारह सौ अधिक पाँच लाख वर्ष (501800) है।

चुलसीदि-सहस्साइं, तिसय-असीदि-संवच्छर-पमाणं।
तित्थपवट्टणकालो, तित्थयरसिरिणेमिणाहस्स।।714।।

अर्थ-श्री नेमिनाथ तीर्थंकर का तीर्थप्रवर्तन काल चौरासी हजार तीन सौ अस्सी वर्ष (84380) प्रमाण है।

तित्थ-पवट्टणकालो, बावीस-हीण-तिसय-वच्छराइं।
उवसग्ग-जिअगासि-सिरि-तित्थयर-पासणाह-जिणस्स।।715।।

अर्थ-उपसर्ग विजेता तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जिन का तीर्थप्रवर्तन काल बाईस कम तीन सौ वर्ष अर्थात् दो सौ अठत्तर वर्ष (278) है।

बेदाल-समहिद-एगवीस-सहस्साइं संवच्छराणि।
वड्ढमाण-जिणिंदस्स, धम्मतित्थपवट्टणकालो।।716।।

अर्थ-श्री वर्धमान जिनेंद्र का धर्मतीर्थ प्रवर्तन काल बयालीस अधिक इक्कीस हजार वर्ष (21042) है।

उसहादु सीयलंतं, चुलसीदी य अणुबद्ध-केवलिणो।
सेयंसे बाहत्तरि-चउदालं च वासुपुज्जम्मि।।717।।

विमलजिणे चालीसं, णेमिजिणंतं चउ-हीणा कमसो।
पासणाहम्मि तिण्णि, तिण्णि होही वड्ढमाणम्मि।।718।।

अर्थ-श्री आदिनाथ जिन से श्री शीतलनाथ पर्यंत चौरासी (84) अनुबद्ध केवली हुए। श्री श्रेयांसनाथ व श्री वासुपूज्य के काल में बहत्तर (72) व चवालीस (44) अनुबद्ध केवली हुए। श्री विमलनाथ जिन के काल में चालीस (40), पुनः क्रमशः श्री नेमिनाथ जिन पर्यंत चार-चार हीन, श्री पार्श्वनाथ जिन के काल में तीन व वर्द्धमान जिन के काल में भी तीन अनुबद्ध केवली हुए।

सयं सुपासजिणंतं, वा चंदादु सेयसंतं णउदी।
बारसमे चुलसीदी, सेसेसु पुव्वव्वणुबद्धा।।719।।

अर्थ-अथवा पाठांतर से श्री सुपार्श्वनाथ तक सौ (100), चंदप्रभ से श्रेयांसनाथ तक नब्बे (90), बारहवें वासुपूज्य के काल में चौरासी (84) शेष तीर्थंकरों में पूर्ववत् ही अनुबद्ध केवली हुए।

देवा देवंगणा य, असंखेज्जा खलु तित्थयर-जिणस्स।
संखेज्जा माणुसा य, तिरिया होंति समवसरणम्मि।।720।।

अर्थ–श्री तीर्थंकर जिन के समवशरण में असंख्यात देव–देवांगना और संख्यात् मनुष्य व तिर्यंच होते हैं।

उसहादो चंदंतं, अखंडो अग्गे धम्म–णाहंतं।
काल–दोसेण किण्णु, होहीअ हु धम्मविच्छेदो।।721।।

अर्थ–श्री वृषभनाथ से श्री चंद्रप्रभ तक धर्म अखंड रहा किन्तु आगे श्री धर्मनाथ भगवान् तक कालदोष के कारण धर्म विच्छेद हुआ।

सुविहिजिण–तित्थयाले, पल्लस्स चदुत्थभागो होहीअ।
सुजिणधम्मविच्छेदो पुण–पुण सिरिधम्मणाहंतं।।722।।

अद्धं तिपादपल्लं, पल्लं तिचरणपल्लं पल्लद्धं।
कमेण चदुत्थभागो, पल्लस्स य तित्थविच्छेदो।।723।।

अर्थ–श्री सुविधि जिन के तीर्थकाल में पल्य के चतुर्थ भाग प्रमाण जिनधर्म का विच्छेद रहा। पुनः पुनः श्री धर्मनाथ भगवान् तक क्रमशः आधा (1/2) पल्य, पौन 3/4 पल्य, (एक) पल्य, 3/4 पौन पल्य व अर्द्ध 1/2 पल्य व 1/4 पल्य धर्म तीर्थ का विच्छेद रहा।

सिरिसंतिजिणिंदादो, धम्मपरंपरा महावीरंतं।
अविच्छिण्णातु सददं होज्ज पंचमकालंतंतं।।724।।

अर्थ–श्री शांतिनाथ भगवान् से श्री महावीर जिन तक धर्म की परंपरा अव्युच्छिन्न व सतत् रही है और पंचमकाल के अंत तक होगी।

समवशरण व जिनदेव माहात्म्य

पत्तेयं तित्थयरा, पंच–कल्लाण–विहूदि–संपण्णा।
ते हु पंच–कल्लाणा, समत्था भव्व–कल्लाणाय।।725।।

अर्थ–प्रत्येक तीर्थंकर पंच कल्याणक की विभूति से संपन्न होते हैं वे पंच कल्याणक भव्यों के कल्याण के लिए समर्थ हैं।

समवसरणे पल्लस्स, असंखेज्ज-भाग-पमाणं जिणस्स।
बहुविहा जीवा होंति, पवट्टमाणा जिणभत्तीइ।।726।।

अर्थ-जिनेन्द्र प्रभु के समवशरण में जिन भक्ति में प्रवर्तमान पल्य के असंख्यात भाग प्रमाण बहुत प्रकार के जीव होते हैं।

थोगखेत्ते चिट्ठिदुं, सक्का अपुट्ठ-असंखेज्ज-जीवा।
अचिंतणीय-पहावो, एरिसो जिण-समवसरणस्स।।727।।

अर्थ-समवशरण के अल्प क्षेत्र में ही असंख्यात् जीव अस्पृष्ट रूप से बैठने में समर्थ होते हैं ऐसा जिन समवशरण का अचिंतनीय प्रभाव है।

अंतोमुहुत्तयाले, समवसरणे पविसेदुं समत्था।
णिग्गच्छिदुं वि जीवा, अदिसयो जिण-समवसरणस्स।।728।।

अर्थ-जीव अंतर्मुहूर्तकाल में ही समवशरण में प्रवेश करने तथा बाहर निकलने में समर्थ होते हैं यह जिन समवशरण का अतिशय है।

हवंति णेव असण्णी, णेव अभव्वा मिच्छाइट्ठी तह।
सिरि-मंडव-भूमीए, अट्ठमे सद्दिट्ठी णियमा।।729।।

अर्थ-अष्टम श्री मंडप भूमि में न असंज्ञी होते हैं और न ही अभव्य व मिथ्यादृष्टि होते हैं वहाँ नियम से सम्यग्दृष्टि होते हैं।

आतंक-जम्म-मरणं, ण होज्ज कयाइ ताए भूमीए।
णो को वि रोयो तहा, णो खासो छीआ हिक्का वि।।730।।

अर्थ-उस अष्टम भूमि में आतंक, जन्म, मरण कदापि नहीं होता तथा कोई भी रोग नहीं होता यहाँ तक कि खाँसी, छींक व हिचकी भी नहीं आती।

वइर-दोस-कलह-जुत्त-रुद्द-परिणामा ण ठिद-जीवेसु।
ण कसाय-उव्वेगो, ण विसयासत्ती होज्ज तत्थ।।731।।

अर्थ-वहाँ स्थित जीवों में बैर, द्वेष, कलह से युक्त रौद्र परिणाम नहीं होते, कषायों का उद्वेग व विषयों में आसक्ति नहीं होती।

बुभुक्खा णहि पिवासा, णो कामबाधा जिणमाहप्पेण।
ण जिम्हं अहंकारो, णो रोसो लोभो य कयाइ।।732।।

अर्थ–जिनेन्द्र प्रभु के माहात्म्य से न क्षुधा, न पिपासा और न कामबाधा होती। मायाचारी व अहंकार कदापि नहीं होता और न ही क्रोध व लोभ ही होता है।

णेव अणंताणुबंधि-मिच्छत्त-सासण-मिस्स-भावा वा।
जीवाण माहप्पेण तिलोयणाह-तित्थयरस्स हु।।733।।

अर्थ–त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर के माहात्म्य से जीवों के अनंतानुबंधि, मिथ्यात्व, सासादन व मिश्र भाव नहीं होते।

णेव हु अहमिंदा णव-गेवेज्जाइ-विमाणाणं कयाइ।
णो लोयंतिग-देवा, आगच्छंति समवसरणम्मि।।734।।

अर्थ–समवशरण में कदापि नव ग्रैवेयक आदि विमानों के अहमिंद्र और ना लौकांतिक देव आते हैं।

णो होंति अहिय-जीवा, अद्धपोग्गलपरिवट्टणयालादु।
रोयी णिरामयी अवि, अट्ठम-सिरिमंडव-भूमीइ।।735।।

अर्थ–अष्टम श्री मंडप भूमि में अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल की स्थिति से अधिक वाले जीव नहीं होते एवं रोगी भी निरोगी हो जाते हैं।

धम्म-तित्थ-पवट्टगा, जे ते होज्जा तित्थयरा णियमा।
पणकल्लाण-णिहि-जुदा, समत्था लोय-कल्लाणाय।।736।।

अर्थ–जो धर्म तीर्थ के प्रवर्तक पंचकल्याणक निधि से युक्त होते हैं वे तीर्थंकर जाने जाते हैं एवं नियम से लोक कल्याण में समर्थ हैं।

होज्ज एग-समयम्मि हि, एग-तित्थयरो एगज्ज-खंडे।
णेव हु विदियो कयाइ, णियमा एरिसो णादव्वो।।737।।

अर्थ–एक आर्यखंड में एक समय में एक ही तीर्थंकर होते हैं, (उसी समय, उसी क्षेत्र में) दूसरे कदापि नहीं होते ऐसा नियम से जानना चाहिए।

पत्तेय-जिण-केवली, अणंताणंत-पदत्था जाणंति।
समये वि ताण अणंत-पज्जाया पडिबिंबंति सय।।738।।

अर्थ-प्रत्येक केवली जिन एक समय में अनंतानंत पदार्थों को जानते हैं। तथा उनकी अनंत पर्याय सदा प्रतिबिंबित होती है।

जेत्ता जाणंति जिणा, तस्सणंतमभागो हु णिस्सरदे।
दिव्वझुणीए अणंत-भागं गहंते गणहरा हु।।739।।

अर्थ-जिनेन्द्र प्रभु जितना भी जानते हैं उसका अनंतवाँ भाग दिव्य ध्वनि में खिरता है और उसका अनंतवाँ भाग गणधर देव ग्रहण करते हैं।

णिस्सरदि केवलीणं, दिव्वझुणी जा पमाण-रूवा सा।
ताए अणेग-धम्मा, तं णादुं सियावाय-विही।।740।।

अर्थ-केवली भगवान् की जो दिव्य ध्वनि खिरती है वह प्रमाण रूप होती है। उसके अनेक धर्म होते हैं व उसको जानने के लिए स्याद्वाद विधि है।

पाहण्णेणं हवंति, धम्मुवदेसहिगारी तित्थयरा।
सामण्णो गणहरो य, सुदकेवली ताणमभावे।।741।।

अर्थ-प्रधानता से तीर्थंकर धर्मोपदेश के अधिकारी होते हैं। उनके अभाव में सामान्य केवली, गणधर व श्रुतकेवली होते हैं।

अज्ज भरहे खेत्तम्मि, पच्चक्खणाणीण णो सब्भावो।
णाणी सूरि-पाढगा, धम्म-मुवदेसिदुं खमा तं।।742।।

अर्थ-आज भरतक्षेत्र में प्रत्यक्षज्ञानियों का सद्भाव नहीं है इसीलिए ज्ञानी आचार्य, उपाध्याय धर्मोपदेश देने में समर्थ हैं।

आइरिय-आदेसेण, धम्मुवदेसं देदुं समत्था हु।
मुणिणो ताणमभावे, जदि देसणा आवस्सगा हु।।743।।

सुसत्थ-वायणं कडुअ, दाएज्ज पुण जिणधम्मोवएसं।
भव्वाणं जीवाणं, संसयादि-रहिद-णाणि-वदी।।744।।

अर्थ–उनके अभाव में आचार्य के आदेश से मुनि धर्मोपदेश देने में समर्थ होते हैं। और उनके भी अभाव में यदि देशना आवश्यक हो तो पुनः संशयादि दोषों से रहित ज्ञानी व्रतियों को सुशास्त्रों की वाचना करके भव्य जीवों के लिए जिनधर्मोपदेश देना चाहिए।

होदि एगोहिणाणी, पंचसयसंवच्छरंतरालम्मि।
पंचमयालम्मि ओहिणाण-मप्पखओवसम-जुदो।।745।।

अर्थ–पंचमकाल में पाँच सौ वर्ष के अंतराल में अवधिज्ञान के अल्प क्षयोपशम से युक्त एक अवधिज्ञानी होता है।

जिण-समवसरणम्मि ठिद-सामण्ण-केवलीण णेव कयाइ।
णिस्सरदे दिव्वझुणी, तित्थयर-केवलि-संमुहम्मि।।746।।

अर्थ–जिन समवशरण में तीर्थंकर केवली के सन्मुख स्थित सामान्य केवलियों की दिव्यध्वनि कभी नहीं खिरती।

सुदणाण-मुत्तिरूवा, होज्ज अमियमय-सरस्सदी मुत्ती।
सा सवर-हिदंकरा हु, वंदणीया भव्व-जीवेहि।।747।।

अर्थ–समवशरण में श्रुतज्ञान की मूर्त्तिरूप अमृतरूप सरस्वती देवी की मूर्त्ति होती है। वह स्वपर का हित करने वाली और भव्य जीवों के द्वारा वंदनीय होती है।

एयारसंग-चउदस-पुव्व-णादू जिणिंदसमवसरणे।
विज्जंति सुदकेवली, सुदस्स अगाह-रयणायरा।।748।।

अर्थ–जिनेन्द्र समवशरण में श्रुत के अगाध सिंधु, ग्यारह अंग व चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रुतकेवली विद्यमान होते हैं।

आयारं सुत्तकिदं, ठाण-समवाय-वक्खापण्णत्ती।
णाणकहा हु उवासग-अज्झयणं अंतयडदसं च।।749।।

दसणुत्तरुववादिगं, पण्हवायरणं विवाग-सुत्तं च।
बारसम-दिट्ठिवादं, तमवि पुण पंचविहं जाणह।।750।।

अर्थ–आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्या प्रज्ञप्ति, ज्ञातृ कथा, उपासकाध्ययन, अंत:कृद्दशांग, अनुत्तरोपाददशांग, प्रश्नव्याकरणांग, सूत्रविपांग और बारहवाँ दृष्टिवाद अंग। पुन: यह बारहवाँ अंग भी पाँच प्रकार का जानना चाहिए।

परिकम्म-सुत्त-पढमाणुजोग-पुव्वगदचूलिया कमसो।
पंच-एगेग-चउदस-पंचविहा मुणेदव्वा सय।।751।।

अर्थ–परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत व चूलिका (ये दृष्टिवाद के भेद हैं) ये क्रमश: पाँच, एक, एक, चौदह व पाँच प्रकार के जानने चाहिए।

दिवायर-चंद-जंबूदीव-दीवुदहि-वक्खापण्णत्ती य।
पंचविहं परिकम्मं, पणविह-भव-णासिदुं-सक्कं।।752।।

अर्थ–सूर्य प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति व व्याख्या प्रज्ञप्ति ये पाँच प्रकार के परिकर्म पाँच प्रकार का संसार नष्ट करने में समर्थ हैं।

जल-थल-मायागदा य, रूवगदा आयासगदा तहा।
पंचविहा चूलिया हु, पंचम-गदि-हेदू जाणेह।।753।।

अर्थ–जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता ये पाँच प्रकार की चूलिका पंचम गति का हेतु जानना चाहिए।

उप्पायपुव्वमग्गायणी वीरियाणुप्पवादं तहा।
अत्थिणत्थिप्पवादं, णाणं सच्चप्पप्पवादं।।754।।

कम्मप्पवाद-पच्चाखाणं विज्जाणुप्पवाद-पुव्वं।
कल्लाण-पुव्व-पाणावायं खलु किरियाविसालं।।755।।

अह लोयबिंदुसारं, इत्थं चउदस-पुव्वा मुणेदव्वा।
चउदस गुणट्ठाण-णइ-णित्थारिदुं तरंडोव्व।।756।।

अर्थ–उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यानुप्रवाद, अस्तिनास्ति प्रवाद, ज्ञानप्रवाद,

सत्यप्रवाद, कर्मप्रवाद, आत्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुप्रवाद, कल्याणपूर्व, प्राणावाय, क्रियाविशाल तथा लोकबिंदुसार इस प्रकार ये चौदह पूर्व जानने चाहिए। ये चौदहपूर्व चौदह गुणस्थानों को पार करने के लिए नौका के समान हैं।

जो को वि भव्व-जीवो, झायदे पुण्णरूव-समवसरणं।
तिक्काले पडिदिवसे, तस्स खयंति तिविह-कम्माणि।।757।।

अर्थ-जो कोई भी भव्य जीव प्रतिदिवस तीनों काल में पुण्य रूप समवशरण का ध्यान करता है उसके तीन प्रकार के कर्म (द्रव्य, भाव व नोकर्म) नष्ट होते हैं।

णियड-भव्वो हि सक्को, कुणिदुं सस्सद-सिद्ध-खेत्त-जत्तं।
झायिदुं समवसरणं, मुणीणं च देदुमाहारं।।758।।

अर्थ-शाश्वत सिद्ध क्षेत्र की यात्रा, समवशरण का ध्यान और मुनियों के आहार देने में निकट भव्य ही समर्थ होते हैं।

आसण्ण-भव्वो जो वि, कुव्वदि एआणि तिपुण्ण-कज्जाणि।
सद्धाए सो लहदे, वर-समाहिं पुण सिद्धपयं।।759।।

अर्थ-जो भी आसन्न भव्य इन तीन पुण्य कार्यों को श्रद्धा से करता है वह वह उत्तम समाधि पुनः सिद्ध पद को प्राप्त करता है।

समवसरण-विहवं अवि, पस्सदि सिविणे भव्वी जो को वि।
वंदेदि जिणवरिंदं, अप्पभवेसु सो लहदि सिवं।।760।।

अर्थ-जो कोई भी भव्य स्वप्न में भी समवशरण के वैभव को देखता है, जिनेन्द्र भगवान् की भी वन्दना करता है वह अल्पभवों में मोक्ष प्राप्त करता है।

अड्ढाइज्ज-दीवेसु, सब्भावो हि माणुसाण णियमेण।
ताणं च बहिरम्मि णो, तित्थयरो णो समवसरणं।।761।।

अर्थ-मनुष्यों का सद्भाव नियम से ढाई द्वीपों में ही होता है। उनके बाहर न तीर्थंकर होते हैं, न समवशरण।

तित्थयर-सुभत्तीए, गुणाणुरायेण परमसद्धाए।
भव्वो लहदे णियमा, सयल-सुद्धप्प-गुण-विहवं हु।।762।।

अर्थ-भव्य जीव गुणों के अनुराग व परमश्रद्धापूर्वक तीर्थंकर की सुभक्ति से सकल शुद्धात्म गुणों के वैभव को नियम से प्राप्त करता है।

समवसरणे विज्जंत-तित्थयरा जे अच्चंति भावेहि।
ते होंति अच्चणीया, तिलोयम्मि पुण्ण-जीवेहिं।।763।।

अर्थ-जो भव्य समवशरण में विद्यमान तीर्थंकर की भावपूर्वक भक्ति करते हैं वे तीन लोक में पुण्य जीवों के द्वारा अर्चनीय होते हैं।

गडुअ समवसरणं जो, थुवदि तित्थयरं परम-भत्तीए।
कडुअ गुण-कित्तणं सो, होदि खलु सयल-गुणागारो।।764।।

अर्थ-जो भव्य समवशरण में जाकर परम भक्ति से तीर्थंकर की स्तुति करता है वह जिनेन्द्र प्रभु के गुणों का कीर्तन करके सकल गुणों का खान होता है।

सुभावेहि समवसरण-विराजिद-तित्थयरं हु णमदे जो।
वरासणेण विणयेण, सय पावदि सिद्धभूमिं सो।।765।।

अर्थ-जो भव्य उत्तम आसन, व विनय से समवशरण में विराजित तीर्थंकर को सदा नमस्कार करता है वह सिद्धभूमि को प्राप्त करता है।

सग-चित्त-थिरिमेणं हु, चिंतेदि जो वि समवसरण-विहवं।
लहदि खइय-णाणं सो, होच्चा सुदकेवलिं भत्तो।।766।।

अर्थ-जो भी भक्त अपने चित्त की स्थिरता से समवशरण वैभव का चिंतन करता है वह श्रुतकेवली होकर क्षायिक ज्ञान प्राप्त करता है।

जो जिणिंद-गुण-लीणो, जिणं झायदे तिजोगसुद्धीए।
थोग-भवेसुं लहदे, सिद्धोव्व सयलप्प-गुणा सो।।767।।

अर्थ-जिनेंद्र प्रभु के गुण में लीन जो भव्य तीन योग की शुद्धि से जिनेन्द्र

प्रभु का ध्यान करता है वह स्तोक भवों में सिद्धों के समान सकल आत्म गुणों को प्राप्त करता है।

खण-मेत्त-चिंतणेण वि, भव्वो हु तित्थयर-समवसरणस्स।
सम-सम्मत्त-भावं च, लहदि अणंतरं णिव्वाणं।।768।।

अर्थ-तीर्थंकर प्रभु के समवशरण के क्षण मात्र के चितंन से भी भव्य सम व सम्यक्त्व भाव को अनंतर मोक्ष प्राप्त करता है।

वत्तं सुणदि कुणदि जो, को वि तित्थयर-समवसरणस्स सो।
कसायं समदि पावदि, विरत्त-भावं च विसयादो।।769।।

अर्थ-जो कोई भी तीर्थंकर के समवशरण की वार्त्ता सुनता है, करता है उसकी कषायों का शमन होता है और विषयों से विरक्त भाव प्राप्त करता है।

ग्रंथ प्रयोजन

रायद्दोसं-समिदुं, णिद्दोस-महव्वद-पालिदुं मए।
भावविसुद्धीइ सयल-कम्म-खयिदुं रइदो गंथो।।770।।

अर्थ-अपने रागद्वेष के शमन, निर्दोष महाव्रत के पालन, भाव विशुद्धि व सकल कर्मों के क्षय के लिए मेरे (आचार्य वसुनंदी मुनि) द्वारा यह ग्रंथ लिखा गया।

ग्रंथकार की लघुता

अस्सिं जो लिहिदा सो, सव्वो पुव्वाइरियाणुसारेण।
जदि इह को वि दोसो तु, मम पमाद-अप्पणाण-फलं।।771।।

अर्थ-इस ग्रंथ में जो कुछ भी लिखा गया है वह सब पूर्वाचार्यों के अनुसार लिखा गया है। यदि इसमें कोई भी दोष हो तो वह मेरे प्रमाद व अल्पज्ञान का ही फल है।

तच्चणाणि-णिग्गंथा, तह अभेय-रयणत्तय-पवत्तया।
खमंतु मज्झं णिच्चं, अहमवि सुभावेहि खामामि।।772।।

अर्थ-तत्त्व ज्ञानी निर्ग्रंथ गुरु व अभेद रत्नत्रय में प्रवृत्ति करने वाले मेरे दोषों के लिए मुझे क्षमा करें मैं भी शुभ भावों से क्षमा माँगता हूँ।

आशीर्वाद भावना

सव्वाण तित्थयराण, लोयहिदकर-मंगल्ल-पउमपदं।
पणमामि पुण-पुण जिणा, दोसं खयिय पसीयंतु मे।।773।।

अर्थ-सभी तीर्थंकरों के लोकहितकर, मंगलकारी चरणकमल में पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ। जिनेन्द्र देव मेरे दोषों का क्षय कर मुझ पर प्रसन्न होवें।

दोणीव लहु-मदी मे, णित्थरिदुं जिणागमं णिस्सीमं।
ण समत्थो बारसंग-सुद-देवदा पसीयदु खमदु।।774।।

अर्थ-छोटी नौका के समान मेरी लघु बुद्धि निःसीम जिनागम को पार करने में समर्थ नहीं है। द्वादशांग रूप श्रुत देवता मुझे क्षमा करें व मुझ पर प्रसन्न होवें।

अंतिम मंगलाचरण

पमत्तादो य अजोग-पज्जंतं णिग्गंथमुणी सव्वा।
दिंतु मे बोहिलाहं, सव्वदा णमो णमो ताणं।।775।।

अर्थ-प्रमत्त गुणस्थान से अयोग केवली पर्यंत सभी निर्ग्रंथ मुनि मुझे बोधिलाभ देवें। उनके लिए सर्वदा नमस्कार हो, नमस्कार हो।

तुरिय-यालम्मि भरहे, जिणिंद अजिदाइ-समवसरणाइं।
उसहस्स य तिदिय-याल-अवसाणे होहीअ सुहदं।।776।।

अर्थ-श्री ऋषभनाथ जिन का सुखद समवशरण भरत क्षेत्र में तृतीय काल के अवसान में हुआ तथा श्री अजितनाथ आदि जिनेंद्रों के समवशरण चतुर्थकाल में हुए।

अणंतयालादु अज्ज-पेरंतं अणंत-तित्थयर-जिणा।
होही ते सव्वे हं, पणिवयामि तहा भावी अवि।।777।।

अर्थ-अनंतकाल से आज तक अनंत तीर्थंकर जिन हुए। मैं उन सभी को तथा सभी भावी तीर्थंकरों को भी नमस्कार करता हूँ।

सामण्ण-केवली अवि, अण्णा ओणंदामि तिभत्तीए।
ते सव्वे होंति जिणा, खेमंकरा भव्वजीवाण।।778।।

अर्थ-अन्य सामान्य केवलियों को तीन भक्ति सहित प्रणाम करता हूँ। वे सभी जिन भव्य जीवों के लिए कल्याणकारी होते हैं।

थुणमि तिण्णि-संझासुं, णिच्चं अरिहाइ-पंच-परमेट्ठी।
सिरिजिणबिंबादी चउ-देवदा वि अभिवंदामि हं।।779।।

अर्थ-अरिहंत आदि पंच परमेष्ठी की नित्य तीनों संध्याकालों में स्तुति करता हूँ तथा श्री जिनबिंब आदि चार देवताओं की भी मैं अभिवंदना करता हूँ।

अणेय-सुदधर-तवधर-कुंदकुंदाइरिय-परंपराए।
जिणधम्मपहावगा य, पणमामि परमविसुद्धीए।।780।।

अर्थ-आचार्य कुंदकुंदस्वामी की परंपरा में हुए अनेक जिनधर्म प्रभावक, श्रुतधर व तपस्वी साधुओं को परमविशुद्धि से नमस्कार करता हूँ।

ताए परंपराए, संतिसायरं चरियचक्कवट्टिं।
पायसिंधु-महतवसिं, पणिवयामि जिणागमधरं च।।781।।

अर्थ-उनकी ही परंपरा में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर, जिनागमधर महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी को नमस्कार करता हूँ।

णाण-झाण-तवलीणं, अज्झप्प-जोगिं जयकित्तिसूरिं।
इंदियजयसंजुत्तं, पसिद्धं कित्तिधरं णमामि।।782।।

अर्थ-ज्ञान, ध्यान, तप में लीन, अध्यात्म योगी, इंद्रिय जय से युक्त, प्रसिद्ध

कीर्ति को धारण करने वाले आचार्य श्री जयकीर्ति जी को नमस्कार करता हूँ।

देसस्स भूसणं सिरि-देसभूसणं भारदगोरवं च।
सुउज्जुयार-संजदं, जिणधम्मपहावगं णमामि।।783।।

अर्थ-जिनधर्म प्रभावक, अतिशय सरल आचरण वाले संयत देश के भूषण, भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषण जी को नमस्कार करता हूँ।

जिणसासणस्स थंभं, संघाणुग्गह-णिग्गह-कुसलं हं।
णाणमुत्तिं गुरुवरं, विज्जाणंद-सूरिं वंदे।।784।।

अर्थ-जिनशासन के स्तंभ, संघ के अनुग्रह-निग्रह में कुशल ज्ञानमूर्ति आचार्य श्री विद्यानंद गुरु की वंदना करता हूँ।

प्रशस्ति

णाणणुजोग-सुसंजम-गोत्तकम्म-वीरणिव्वाणद्धम्मि।
गुरुवर-दिक्खा-तिहीइ, आभिणंदिय-सिद-पंचमीइ।।785।।

आइरिय-विज्जाणंद-सहजकिवादिट्ठीइ इमो पुण्णो।
समप्पामि हु णिस्सत्थ-मित्तं व गुरुकरकमलं हं।।786।।

अर्थ-आचार्य गुरुवर श्री विद्यानंद जी महाराज की सहज कृपादृष्टि से ज्ञान (5) अनुयोग (4) सुसंयम (5) गोत्रकर्म (2) अर्थात् 2545 वीरनिर्वाणाब्दे गुरुवर की दीक्षा तिथि श्रावण शुक्ल पंचमी के दिन यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। मैं यह ग्रंथ नि:स्वार्थ मित्र के समान गुरु के कर कमलों में समर्पित करता हूँ।